पंजीयन क्रमांक : 70269/98
आई एस एस एन : 0972-169X

डाक पंजीयन क्रमांक : डी एल–एस डब्ल्यू–1/4082/12-14
डाक से भेजने की तिथियां : 26-27 अग्रिम माह की
प्रकाशन तिथि : अग्रिम माह की 24 तारीख

विज्ञान प्रसार

ड्रीम 2047

जनवरी 2013 | खण्ड 15 | अंक 4 | 5.00 रुपए

100वीं भारतीय विज्ञान कांग्रेस

भारतीय विज्ञान कांग्रेस का शताब्दी अधिवेशन

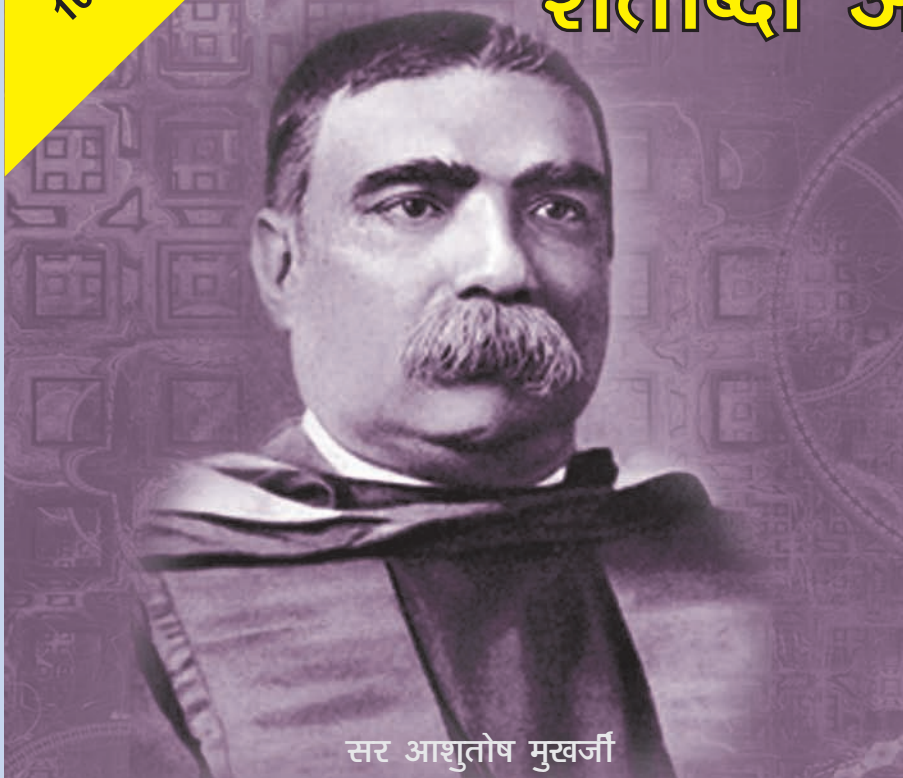

सर आशुतोष मुखर्जी

संपादकीयः अनुपालन के लिए संचार की सफलता हेतु समर्थकारी परिस्थितियां आवश्यक 2

आसिमा चटर्जीः भारतीय विज्ञान कांग्रेस की प्रथम महिला प्रधानाध्यक्ष 3

अभाज्य संख्याओं का गूढ़ संबंध 6

प्लास्टिक–जनित प्रदूषण के खतरेः भावी पीढ़ी को चुनौती 8

भारतीय विज्ञान कांग्रेस का शताब्दी अधिवेशन 11

क्रॉनिक मायेलॉयड ल्यूकेमिया–मूलभूत जानकारी 13

2012 की दस महत्वपूर्ण विज्ञान खबरें 15

अभाज्य संख्याओं का गूढ़ संबंध

... वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें ... वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें ... वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ...

अनुपालन के लिए संचार की सफलता हेतु समर्थकारी परिस्थितियां आवश्यक

डॉ. आर. गोपीचन्द्रन

यह जाना-माना तथ्य है कि प्रदूषण के अधिप्रभावों से संबंधित स्पष्ट आनुभविक साक्ष्य अनुपालन मानदंडों को कड़ाई से लागू करने के लिए संदर्भ मानक की स्थापना करते हैं। ये साक्ष्य अस्तव्यस्तता के कारणों और अधिप्रभावों की प्रकृति एवं स्तर के बीच के संबंधों के तर्क का आग्रह करते हैं। लेकिन प्रदूषणकर्त्ताओं की अनुपालन हेतु तत्परता विकल्पों का इस्तेमाल करने की उनकी तकनीकी क्षमताओं के आलावा अनुपालन की लागत तथा विकल्पों तक उनकी पहुंच जैसे पहलुओं द्वारा भी अवसर निर्धारित होती है। ओजोन परत संरक्षण ऐसा ही एक विचारणीय प्रारूपिक मामला है।

प्रगति के मूर्त संकेतकों द्वारा निर्देशित समर्थ करने वाले कारकों को परस्पर सुदृढ़कारी होना चाहिए। ओजोन परत के संरक्षण हेतु मांट्रिएल प्रोटोकॉल के विकास एवं क्रियान्वयन से किसी पर्यावरणीय समस्या को समझने और उससे उत्पन्न चुनौतियों से निपटने के लिए की गई केंद्रीभूत कार्रवाई के बीच के संबंधों से बड़े महत्वपूर्ण सबक हासिल होते हैं। इस प्रक्रिया के त्वरित विश्लेषण से यह पता चलता है कि अवलोकनों की तीक्ष्ण और संगत व्याख्या द्वारा व्यक्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रोटोकॉल के सभी पहलुओं में समाहित था। ये अवलोकन समतापमंडल में ओजोन के स्तर में वास्तविक गिरावट तथा ओजोन को नष्ट करने वाले मूलकों की मौजूदगी एवं प्रभाव के बीच के भौतिक और रासायनिक सहसंबंधों से जुड़े हैं। पराबैंगनी विकिरण के गहन और अक्षांश-विशिष्ट मापन इन अवलोकनों की पुष्टि करते हैं और प्रतिकारी उपायों के मार्गदर्शन का पथ प्रशस्त करते हैं।

ओजोन परत के क्षरण को रोकने और उसके स्तर में सुधार लाने की प्रेरक शक्ति को जमीनी स्तर के समर्थकारकों (इनेब्लर्स) द्वारा ही संबल प्राप्त होता है। ऐसे पांच प्रकार के समर्थकारक हैं। इनमें निम्न कारकों के सुपरिभाषित एवं प्रमाणनीय अधिप्रभाव शामिल हैं:

1. विनियम जिनका देशों द्वारा पालन के लिए अन्तर्निहित अनुपालन संबंधी मॉनिटरन हो;
2. देशों द्वारा विनियमों का अनुपालन करने के लिए क्रमशः पुरस्कार और दंड का प्रावधान;
3. विकल्पों का उपयोग करने पर नागरिकों के लिए पुरस्कार की व्यवस्था;
4. उद्योगों को विकल्पों की ओर उन्मुख करने के लिए वित्तीय और गैर-वित्तीय उपाय
5. सांस्थानिक तंत्र जो प्रोटोकॉल के लक्ष्यों पर केंद्रीभूत समुचित सूचना के सामयिक प्रवाह को सुनिश्चित करनी हो।

सूचना वास्तविक संबंधों के जरिए नागरिकों के क्षमता निर्माण में सहायक होती है। सबसे महत्वपूर्ण संबंध पराबैंगनी विकिरण के स्तर और मानव स्वास्थ्य पर इसके अधिप्रभाव के बीच है। इसमें मोतियाबिंद और 'नॉन-मेलानोमा' जाति के त्वचा कैंसर शामिल हैं। अतः आवश्यकता केवल विकल्पों वाले ऐसे पदार्थों के उपयोग की है जो ओजोन परत का क्षरण न करें। विकल्पयुक्त उपभोक्ता उत्पादों को प्रोत्साहित किया जाता है ताकि विकल्पों को इस्तेमाल करने के फायदों को रेखांकित किया जा सके और एक वैश्विक उद्देश्य का समर्थन किया जा सके। इसे खासतौर पर बाजार में उपलब्ध नोदकों, फोम, प्रशीतन एवं एयर कंडिशनिंग प्रणालियों के मामले में देखा जा सकता है।

समतापमंडल में क्लोरोफ्लोरोकार्बन आधारित प्रशीतकों के ओजोन क्षरण अधिप्रभाव तथा क्षोभमंडल में इनकी उपस्थिति से उत्पन्न भूमंडलीय तापन के प्रधिप्रभाव के बीच का संबंध अब सर्वविदित है। इससे एक उचित संचार रणनीति, जो विकल्पों के इस्तेमाल के दोहरे लाभों को रेखांकित कर सके, को विकसित करने की आवश्यकता सामने आई। इन दोहरे लाभों में ओजोन परत और जलवायु परिवर्तन की समस्याओं का एक ही साथ समाधान निहित है। समस्याओं के अभिसरण एवं उनके समाधान के अवसरों के अगले कदम के रूप में अन्य अनेक देशों की तरह भारतीय बाजार ने भी विकल्पों का उपयोग करने वाले ऊर्जा-दक्ष उपकरणों तथा ऊपर उल्लेख किए गए दोहरे लाभों के बीच के संबंध को अंतग्रहण किया है। ये कदम वास्तविक संबंध को सुदृढ़ करते हैं और इस तरह स्थानीय रूप से सार्थक और सामयिक कार्रवाई द्वारा वैश्विक पर्यावरणीय संरक्षण के मूर्त लाभों को ग्रहण करने का अवसर प्रदान करने हैं।

छोटे और मध्यम उद्यमों में कर्मियों को अपने उत्पादों एवं उत्पादन प्रणालियों में विकल्पों के उपयोग के लिए खासतौर पर प्रशिक्षित किया जाता है। भारत में औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों एवं उद्योग संघों के माध्यम से आयोजित किए जाने वाले राष्ट्रव्यापी प्रशिक्षण एवं क्षमता निर्माण कार्यक्रमों का लक्ष्य उद्योगों में पणधारियों को विकल्पों के बारे में जानकारी देना है। स्कूल एवं उच्च शिक्षा के स्तर पर भी इस किस्म की पठन सामग्री एवं उसके उद्देश्यों को शामिल करने के प्रयास चल रहे हैं।

वास्तविक संबंधयुक्त वैज्ञानिक साक्ष्य निश्चित रूप से तीव्र एवं प्रमाणनीय कार्रवाई के लिए जमीनी संदर्भ की स्थापना करते हैं। तुरंत उपयोग के लिए इन्हें संकलित एवं व्यवस्थित करना होगा। विकल्पों के प्रयोग संबंधी सूचनाएं तथा उन तक आसानी से पहुंचने की प्रणालियां आवश्यक हैं ताकि (विकल्पों की ओर उन्मुख होने की) संक्रमण की स्थिति को बल प्रदान किया जा सके। उत्पादकों की क्षमता निर्माण तथा विकल्प संबंधी उचित सूचनाएं, जिनका इस्तेमाल उपभोक्ता कर सकें, संगठित रूप से कार्य करने की पणधारियों की क्षमता को सुदृढ़ बनाते हैं। ये क्षमताकारक नागरिकों के अंदर मुद्दों एवं विकल्पों की समझ पैदा करने के लिए उनमें सुषुप्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण को उत्तेजित करने के महती उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। रोचक तथ्य यह है कि मुद्दों एवं विकल्पों की निरंतर विकसित होती समझ की उंमुक्तता विकल्पों की ओर उन्मुख होने तथा लोकहित के पर्यावरणीय बहु उद्देश्यों को हासिल करने में मदद करती है। इन क्षमताकारकों के समस्या-विशिष्ट अनुकूलन के माध्यम से ऐसी अनेक चुनौतियों के संदर्भ में भी इस तरह से व्यवस्थित सहक्रियाओं को स्थापित करना उपयोगी होगा। भारत के अपेक्षित 12वीं पंचवर्षीय योजना की शुरूआत तथा जलवायु संबंधी कार्यकलाप के राष्ट्रीय मिशन ऐसे ही एकीकृत हस्तक्षेप के लिए जमीनी संदर्भ तैयार करते हैं।

ई-मेल: r.gopichandran@vigyanprasar.gov.in

(अनुवाद : आभास मुखर्जी) ■

संपादक : सुबोध महंती
संयुक्त संपादक : रिन्टू नाथ
मुद्रण : मनीष मोहन गोरे एवं प्रदीप कुमार
वितरण : हरीश गोयल
पत्र व्यवहार का पता : विज्ञान प्रसार, सी-24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110 016
दूरभाष : 011-26967532; फैक्स : 0120-2404437
ई-मेल : info@vigyanprasar.gov.in
वेबसाइट : http:èèwww.vigyanprasar.gov.in

''ड्रीम 2047'' में प्रकाशित लेखों/प्रलेखों में व्यक्त लेखकों के कथनों, मतों व सुझावों के लिए विज्ञान प्रसार किसी भी रूप में उत्तरदाई नहीं है।

''ड्रीम 2047'' में प्रकाशित लेखों के अंश, सौजन्य/साभार के साथ पुनर्प्रकाशित/उद्धृत किए जा सकते हैं बशर्ते वे पत्र-पत्रिकाएं निःशुल्क वितरित की जा रही हों जिनमें पुनर्प्रकाशन किया जा रहा है।

विज्ञान प्रसार के लिए डॉ. सुबोध महंती द्वारा सी-24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110 016 से प्रकाशित तथा उन्हीं की ओर से अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स, प्रा.लि., ओखला औद्योगिकी क्षेत्र, फेस-II, नई दिल्ली-110 020 द्वारा मुद्रित। फोन : 011-26388830-32

आसिमा चटर्जी

भारतीय विज्ञान कांग्रेस की प्रथम महिला प्रधानाध्यक्ष

डॉ. सुबोध महंती
ई–मेल: smahanti@vigyanprasar.gov.in

"विज्ञान के क्षेत्र में किसी–न–किसी रूप से कार्यरत वैज्ञानिकों, शिक्षकों और सभी व्यक्तियों को न केवल विद्यार्थियों, बल्कि आम जनता को भी अपने इस पावन कार्य की उपयोगिता को समझने में सहायता करनी चाहिए। ऐतिहासिक तथ्य और वैज्ञानिक प्रगति की अपेक्षाएं भी आम जन में विज्ञान की समझ को विकसित करने की परम आवश्यकता की ओर इंगित करती हैं। हमारे प्रयत्नों की सफ़लता, ईमानदारी और उत्साह के साथ–साथ हमारी टीम भावना की गहराई पर भी निर्भर करती है, जिसके साथ ज्ञानोदय के इस कार्य से हम अपने आप को संबोधित करेंगे।"

भारतीय विज्ञान कांग्रेस (1975) में अपने सामान्य अध्यक्षीय संबोधन में आसिमा चटर्जी

"... यदि विज्ञान की मानवीय जटिलताओं पर उचित ध्यान नहीं दिया गया, तो विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास के सभी प्रयत्न व्यर्थ होंगे... विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का लक्ष्य केवल देश की भौतिक जरूरतों की पूर्ती ही नहीं, वरन् उच्च उद्देश्यों एवं वैश्विक समुदाय की धारणा से एक बेहतर संसार का निर्माण करना भी है। राष्ट्रों द्वारा इस दूरदर्शिता के साथ कार्य करने का समय आ गया है।"

भारतीय विज्ञान कांग्रेस (1975) में अपने सामान्य अध्यक्षीय संबोधन में आसिमा चटर्जी

आसिमा चटर्जी ने अपने अनुकरणीय अदम्य साहस, पूर्ण प्रतिबद्धता, प्रबल इच्छा, कठिन परिश्रम और ज्ञान की खोज के प्रति अतृप्त लालसा के बल पर बड़ी कठिनाइयों के बावजूद सफ़लता हासिल की। उनके दर्शन एवं कार्य संस्कृति को लगभग 30 वर्ष पूर्व बंगला साप्ताहिकी के साथ एक साक्षात्कार में कहे गए उनके इन शब्दों से बयां किया जा सकता है: 'मैं जीवित रहने तक कार्य करते रहना चाहती हूं।' इस वचन को उन्होंने पूर्णतया निभाया। बड़ी संख्या में शोधार्थियों ने उनके निर्देशन में पी–एच.डी. और डी.एस–सी. की उपाधियां अर्जित की। लेकिन भारतीय और विदेशी विश्वविद्यालयों, अनुसंधान संस्थानों एवं उद्योग में अपनी विरासत को आगे बढ़ाने के लिए प्राकृतिक उत्पाद रसायनविदों के एक स्कूल की स्थापना करना, मेरे विचार से, भारतीय विज्ञान में उनका सर्वोत्तम योगदान है।

एस. सी. पकराशी, एक जाने–माने प्राकृतिक उत्पाद रसायनविद और आसिमा चटर्जी के पी–एच.डी. छात्र

आसिमा चटर्जी भारत की एक अग्रणी महिला वैज्ञानिक थीं। वह किसी भारतीय विश्वविद्यालय द्वारा 1944 में डॉक्टरेट ऑफ़ साइंस (डी.एस–सी.) की उपाधि प्राप्त करने वाली प्रथम महिला और एक भारतीय विश्वविद्यालय में 'चेयर' का पद प्राप्त करने वाली प्रथम महिला वैज्ञानिक थीं। वह भारतीय विज्ञान कांग्रेस (1975) की प्रथम महिला महाध्यक्ष भी थीं। उनका शोध कॅरिअर पांच दशक लंबा था। उन्होंने भारतीय एवं विदेशी शोध–जर्नलों में 350 से अधिक शोध–पत्र प्रकाशित किए तथा 50 से अधिक पी–एच.डी. छात्रों का मार्गदर्शन किया। भारतीय औषधीय एवं अन्य पौधों से प्राप्त प्राकृतिक उत्पाद, विशेषतः एल्कालॉयड (देखें बॉक्स), कूमरिन्स (पादप–जनित पॉलीफेनोलिक यौगिकों का एक समूह) और टर्पेनॉइड्स (संभवतः प्राकृतिक उत्पादों का सर्वाधिक व्यापक समूह – प्रीनीलिपिड्स का एक उपवर्ग) के क्षेत्र में किए गए महत्वपूर्ण शोध–कार्य के लिए उन्हें जाना जाता है। उनके कार्यों के संदर्भ व्यापक स्तर पर दिए जाते हैं और उनके कुछ महत्वपूर्ण कार्य उनके कार्य–क्षेत्र से संबंधित पाठ्य–पुस्तकों का अंश बन चुके हैं। इंडोल एल्कालॉयड्स पर उनके पुरोगामी शोध–कार्य ने भारत और विदेशों में इस कार्य–क्षेत्र में अनुसंधान कार्यों पर काफी प्रभाव डाला। उन्होंने भारत में प्राकृतिक उत्पाद रसायनविदों का एक स्कूल स्थापित किया।

आसिमा चटर्जी

रौवोल्फिया कैनेसंस के इंडोल एल्कालॉयड्स पर अपने रासायनिक अनुसंधान से 1938 में चटर्जी ने अपना शोध कॅरिअर आरंभ किया। उन्होंने लगभग सभी मुख्य प्रकार के इंडोल एल्कालॉयड्स का अध्ययन किया। चटर्जी के अध्ययनों ने अजमलीसीन और सर्पाजीन की संरचना

रौवोल्फिया कैनेसंस *पहला औषधिय पौधा चटर्जी द्वारा अध्ययन किया गया*

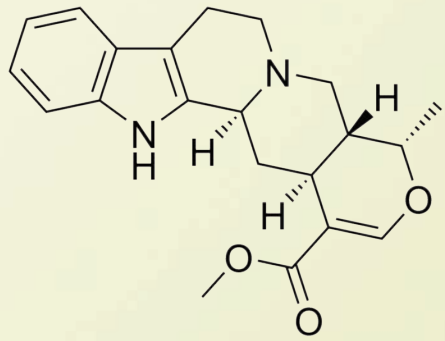

अजमलीसीन की आण्विक सरंचना

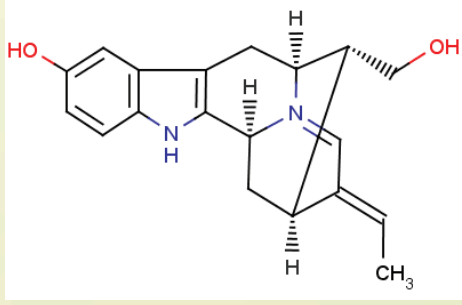

सर्पाजीन की आण्विक सरंचना

दिया। वास्तव में यह चटर्जी ही थीं, जिन्होंने सर्वप्रथम सर्पाजीन का सटीक त्रिविम–विन्यास सुझाया था। रज़ाया स्ट्रिक्टा से इंडोल एल्कालॉयड्स के जीवात्–जनन में एक प्रमुख उत्पाद अर्थात जीसोसेहाईजाईन का पृथक्करण और अभिलक्षणन उनकी महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक थी।

चटर्जी ने *स्टेरॉयडी एल्कालॉयड्स* रसायन पर भी कार्य किया। उन्होंने कई एल्कालॉयड्स के संश्लेषी अध्ययन किए। *रौवोल्फिया कैनेसंस* का मुख्य एल्कालॉयड यानी *रौवोल्सिन* का त्रिविम–विनिर्दिष्ट संश्लेषण उनके संश्लेषी कार्य की प्रमुख उपलब्धियों में से एक है। इस एल्कालॉयड का संश्लेषण करने के लिए उन्होंने वांछित बीटा–फेनिल एथेनॉलएमीन्स को तैयार करने की एक साधारण प्रक्रिया विकसित की।

उन्होंने टर्पेनॉइड्स रसायन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। टर्पेनॉइड्स के अध्ययन के लिए उन्होंने अफनामिक्सिस पोलीस्टाकिया, वाल्सुरा टैबूलेटा, सड्रेला टूना, जेंथोजाइलम रेट्सा, आर्टिमिसिया वुल्गारिस, क्रोटन कौडेटस और कैलीकार्पा मैक्रोफिला सहित एक दर्जन से अधिक पौधों का अच्छी तरह से परीक्षण किया। उन्होंने टर्पेनॉइड्स के रूपांतरण का विस्तृत अध्ययन किया और लेविस अम्ल उत्प्रेरित पुनर्विन्यास के जरिए विभिन्न संरचनाओं वाले टर्पेनॉइड्स का सहसंबंध स्थापित किया। यह एक अनुपम कार्य था, जिससे टर्पेनॉइड्स के संरचनात्मक संबंधों की एक बेहतर समझ विकसित हुई।

कूमरिन्स रसायन पर भी चटर्जी का कार्य अत्यधिक महत्वपूर्ण था। कूमरिन्स पर उनका कार्य ल्यूवुंगा स्कैन्डेंस से पृथक किए गए ल्यूवैन्जेटिन की संरचना की व्याख्या के साथ आरंभ हुआ। उन्होंने और उनके समूह ने रूटाशिया, अंबेलीफरा, कंपोजिटे, यूफोरबिशिया और थाइमेलेशिया प्रजातियों से संबंधित भारतीय औषधीय पौधों से कूमारिन्सयुक्त रोचक प्रतिस्थापन पैटर्नों की एक बड़ी संख्या को पृथक किया। उन्होंने प्रीनाइलेटेड कूमरिन्स पर विविध लेविस अम्लों की क्रिया पर विस्तृत अध्ययन किया और जटिल कूमरिन्स के कई साधारण संश्लेषी मार्ग तैयार किए।

चटर्जी ने मैकेनिस्टिक कार्बनिक रसायन में भी कार्य किया। उन्होंने फेनिलएथेनॉल के अम्ल–उत्प्रेरित हाइड्रैमीन विखंडन क्रियाविधि का अच्छी तरह से अन्वेषण किया। उन्होंने परआयोडिक अम्ल (H_5IO_3) का प्रयोग करते हुए कार्बनिक यौगिकों में दोहरे बंध का पता लगाने और स्थापित करने की एक विधि विकसित की। यह विधि ओज़ोनोलिसिस का एक अच्छा विकल्प थी।

चटर्जी और उनके समूह ने मर्सिलिया मिन्यटा से आयुष–56 नामक एक मिरगीरोधी तथा अल्स्टोनिया स्कोलरिस, स्वेर्टिया चिरैटा, पिक्रोरिजा कुरोआ और केसेल्पिनिया क्रिस्टा से मलेरियारोधी औषधि विकसित की। इन औषधियों का पेटेंट लिया गया और इन्हें विभिन्न कंपनियों द्वारा विकसित किया गया।

अपने समय के अन्य वैज्ञानिकों की तरह आसिमा चटर्जी को भी एक अनुसंधानकर्त्ता के रूप में स्वयं को स्थापित करने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ा। इस संबंध में उनके शुरू के पी–एच. डी. छात्रों में से एक एस. सी. पकराशी की टिप्पणी पर ध्यान देना अति महत्वपूर्ण है: "उनके शुरू के पी–एच.डी. छात्रों में से एक होने के कारण स्वयं को स्थापित करने के लिए उनके आरंभिक संघर्ष का मैंने बहुत निकट से अवलोकन किया है। खास तौर पर अपर्याप्त रसायनों एवं बहुत कम वित्तीय सहायता से चलने वाली विश्वविद्यालयों की कमियों भरी प्रयोगशालाओं में शोध कार्य के लिए वह समय बहुत ही कठिनाइयों भरा था। विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग एवं जैव–प्रौद्योगिकी विभाग की स्थापना नहीं हुई थी तथा वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् तब निर्माणाधीन अवस्था में ही थी। अनुसंधान निर्देशकों को आम तौर पर न केवल रसायनों, उपकरणों आदि के लिए, बल्कि प्रारंभिक और विदेशों से करवाए जाने वाले लगभग सभी स्पेक्ट्रमी विश्लेषणों तक के लिए धन लगाना पड़ता था। छात्रवृत्तियां बहुत कम और आर्थिक रूप से अपर्याप्त हुआ करती थीं; मुद्रण, परीक्षा शुल्क और यहां तक कि विदेशी परीक्षक(कों) के पास शोध–प्रबंध भेजने, जो कि अनिवार्य था, के डाक प्रभार सहित शोध–प्रबंध जमा करवाने की सभी आवश्यक लागत का भुगतान करने के लिए अधिकतर शोध छात्रों को कार्य करना पड़ता था, जबकि कॅरिअर के बतौर शोध में नाममात्र को ही रोजगार मिल पाता था। जब मैं उनसे जुड़ा तब उनके पास मात्र रु. 300/– प्रति वर्ष का ही अनुदान था और तीन कॉलेज शिक्षक उनके अंशकालीन शोध छात्र थे।"

आसिमा चटर्जी का जन्म 23 सितंबर 1917 को बंगाल के एक मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ। वह कलकत्ता (अब कोलकाता) में बड़ी हुईं। अपनी स्कूली शिक्षा पूरी करने के बाद उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्कॉटिश चर्च कॉलेज में प्रवेश लिया, जहां से उन्होंने 1936 में रसायन विज्ञान ऑनर्स में स्नातक की उपाधि ली। सन् 1938 में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से कार्बनिक रसायन विज्ञान (मेजर) में एम.एस–सी. की उपाधि अर्जित की। सन् 1944 में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से ही डी.एस–सी. की उपाधि अर्जित की। भारत में प्राकृतिक उत्पाद रसायन विज्ञान विषय के प्रणेता पी. के. बोस उनके शोध निर्देशक थे। उनका शोध–प्रबंध पादप उत्पाद रसायन विज्ञान और संश्लिष्ट कार्बनिक

बॉक्स–1: एल्कालॉयड्स

एल्कालॉयड्स का प्रयोग या और सटीक रूप से कहें तो मनुष्य द्वारा एल्कालॉयड्स युक्त पौधों के प्रयोग का इतिहास 3,000 वर्षों पुराना है। मध्य पूर्व में 1200 ई.पू. के आसपास अफीम के पौधे के लेटेक्स के प्रयोग का चलन था। 339 ई.पू. में यूनानी दार्शनिक सुकरात को कोनिईन–युक्त हेम्लॉक का अर्क दिया गया था।

एल्कालॉयड्स प्राकृतिक उत्पादों का एक समूह है। अधिकतर एल्कालॉयड्स में एक या एक से अधिक नाइट्रोजन परमाणु होते हैं। अपने विशुद्ध रूप में ज्यादातर एल्कालॉयड्स रंगहीन, अवाष्पशील, क्रिस्टलीय ठोस होते हैं। लगभग सभी एल्कालॉयड्स का स्वाद कड़वा होता है। एल्कालॉयड्स मुख्य रूप से पौधों में पाए जाते हैं। एल्कालॉयड्स उत्पन्न करने वाली पौधों की 4,000 से अधिक प्रजातियों की पहचान की गई है। एल्कालॉयड्स जीवाणुओं, कवकों और जानवरों द्वारा भी पैदा होते हैं। एल्कालॉयड्स मनुष्यों एवं अन्य जानवरों पर विविध शारीरिक प्रभाव डालते हैं। कई एल्कालॉयड्स के भेषजगुणविज्ञानीय प्रभाव भी होते हैं और इन्हें उपचार हेतु उपयोग में लाया जाता है।

"एल्कालॉयड" (एल्कली–लाइक) का नामकरण जर्मन रसायनविद कार्ल एफ़. डब्ल्यू. माइसनर द्वारा 1819 में किया गया। एल्कालॉयड्स का वैज्ञानिक अध्ययन फ्रेडरिक सरटर्नर द्वारा अफीम से मॉर्फिन के पृथक्करण के बाद सन 1806 में शुरु हुआ। सरटर्नर ने यूनानी स्वप्न देवता मॉर्फिअस के नाम पर इसका नाम "मॉर्फियम" रखा। इस नाम का जर्मन सहित कुछ भाषाओं में अब भी प्रयोग किया जाता है। फ्रांसिसी भौतिकीविद जोसेफ लुइस गे–लुसाक ने ही इसे "मॉर्फिन" नाम दिया। मॉर्फिन की खोज के बाद 12,000 से अधिक एल्कालॉयड्स को पृथक किया गया। कुछ महत्वपूर्ण एल्कालॉयड्स, जिन्हें मॉर्फिन की खोज के बाद पृथक किया गया, वे हैं: जैन्थाईन (1817), स्ट्रिक्नीन (1818), एट्रोपीन (1819), कुनैन (1820), कैफीन (1820), कोनिईन (1827), निकोटीन (1828), कोल्चिसीन (1833), स्पार्टीन (1851), और कोकीन (1860)।

संश्लेषित किया जाने वाला प्रथम एल्कालॉयड पिपेरिडीन अल्कालॉयड कोनिईन था, जो अत्यंत आविषालु है, और जो प्रेरक तंत्रिकाओं के पक्षाघात का कारण बना है। कोनिईन को जर्मन रसायनविद अल्बर्ट लेडनबर्ग द्वारा 1886 में संश्लेषित किया गया।

एल्कालॉयड्स काफी में संरचनात्मक विविधता प्रदर्शित करते हैं। एल्कालॉयड्स हेतु एक समरूप वर्गीकरण पद्धति का विकास कर पाना एक जटिल कार्य सिद्ध हुआ है। जिस पौधे से एल्कालॉयड निकाला गया हो, उस पौधे की प्रजाति अथवा वंश नाम के अंत में "ईन" जोड़ कर एल्कालॉयड का नामकरण किया जाता है। इसके आम उदाहरण हैं: एट्रोपीन (एट्रोपा बैलाडोना पौधे से पृथक्कृत) और स्ट्रिक्नीन (स्ट्रिक्नोस मुक्स–वोमिका एल. से प्राप्त)। जब केवल एक ही पौधा कई एल्कालॉयड्स का स्रोत हो तो उनके नाम के अंत में प्रायः "ईडीन", "एनीन", "एलीन", ईनीन" आदि जोडा जाता हैं। विंका पौधे से निकाले गए कम से कम 86 एल्कालॉयड्स के नामों के मूल में "विन" शब्द का प्रयोग होता है।

रसायन विज्ञान पर था। उनके शोध–प्रबंध के परीक्षक नोबल पुरस्कार विजेता ए. आर. टॉड थे जिन्होंने खूब सराहना की ऐसा कहा जाता है कि औषधीय पादपों में उनकी रुचि अपने पिता इंद्र नारायण मुख़र्जी जो आयुर्विज्ञान से जुड़े होने के साथ–साथ एक शौकिया वनस्पतिविद भी थे, को देखकर उत्पन्न हुई। उनके पति बरदानंद चटर्जी, जो एक पहुंचे हुए भौतिक रसायनविद् थे, बंगाल इंजीनियरिंग कॉलेज (वर्तमान में मानद विश्वविद्यालय) के उप प्राचार्य थे।

पी. के. बोस, चटर्जी के अनुसंधान गाइड

पॉल कैरर, नोबेल पुरस्कार विजेता जिनके साथ चटर्जी ने ज्युरिख में कार्य किया

सन 1940 में चटर्जी ने लेडी ब्राबॉर्न कॉलेज में रसायन विज्ञान के संस्थापक अध्यक्ष की हैसियत से कार्यग्रहण किया। सन् 1944 में उन्हें कलकत्ता विश्वविद्यालय में रसायन विज्ञान में एक मानद व्याख्याता के रुप में नियुक्त किया गया। सन् 1947 में वह संयुक्त राज्य अमेरिका गईं, जहां उन्होंने पहले तो एल. एम. पार्क्स के साथ विस्कॉन्सिन विश्वविद्यालय में प्राकृतिक रूप से प्राप्त होने वाले ग्लाइकोसाइड्स पर कार्य किया और फिर एल. जेख्माइस्टर के साथ कैलिफ़ोर्निया इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी, पासाडीना में कार्य किया। कैलिफ़ोर्निया इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलाजी में उन्होंने कैरोटेनॉइड्स और प्रो–विटामिन्स पर कार्य किया। सन् 1949 में नोबेल पुरस्कार विजेता पॉल कैरर के साथ कार्य करने के लिए वह जुरिख विश्वविद्यालय गईं और वहां जैव सक्रिय एल्कालॉयड्स पर उन्होंने कार्य किया। सन 1950 में वह वापिस भारत लौटीं।

सन 1954 में चटर्जी ने लेडी ब्राबॉर्न कॉलेज छोड़ दिया और कलकत्ता विश्वविद्यालय के यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ साइंस के रसायन विज्ञान विभाग के साथ वह जुडीं, जहां अपने सक्रिय अकादमिक कॅरिअर के अंत तक उन्होंने कार्य किया। उनकी नियुक्ति कलकत्ता विश्वविद्यालय के सर्वाधिक प्रतिष्ठित और आकांक्षित पदों में से एक खैरा प्रोफेसर के पद (चेयर) पर हुई। वह इस पद पर 1982 तक रहीं।

चटर्जी ने सन 1973–1977 के दौरान भारतीय औषधीय पौधों पर कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित छह–खंडों के एक ग्रंथ *भारतीय वनौषधि* का संशोधन, अद्यतनीकरण और संपादन किया। यह ग्रंथ मूल रूप से के. पी. बिस्वास द्वारा संपादित किया गया था। वह वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् द्वारा छह खंडों में प्रकाशित ग्रंथ *ट्रीटाइज ऑन इंडियन मेडिसिनल प्लांट्स* की मुख्य संपादक थीं।

चटर्जी भारतीय विज्ञान कांग्रेस से बहुत घनिष्ठता से जुड़ी हुई थीं। इसके महासचिव और कोषाध्यक्ष दोनों पदों पर उन्होंने तीन–तीन वर्ष कार्य किया। इसके महाध्यक्ष के पद पर 1974 से 1977 तक उन्होंने तीन वर्ष कार्य किया। रसायन विज्ञान की प्रोफ़ेसर होने के साथ–साथ उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय को अनेक तरह से अपना योगदान दिया। विश्वविद्यालय सीनेट व सिंडिकेट की सदस्या के रूप में भी उन्होंने अपनी सेवाएं दीं। अकादमिक परिषद् और रसायन विज्ञान में बोर्ड ऑफ स्टडीज के साथ ली वह संबद्ध रहीं।

आयुर्वेदिक दवाओं के विकास के लिए भारतीय औषधीय पौधों पर अनुसंधान हेतु एक क्षेत्रीय अनुसंधान संस्थान की स्थापना में उन्होंने कारगर भूमिका निभाई। यह संस्थान साल्ट लेक, कलकत्ता में केंद्र–राज्य सहयोग से केंद्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध परिषद् के तत्त्वावधान में स्थापित किया गया। सुव्यवस्थित नैदानिक जांच के लिए संस्थान के एक अंग के रूप में एक आयुर्वेदिक अस्पताल को भी स्थापित किया गया। चटर्जी को मानद मुख्य समन्वयक बनाया गया और इस हैसियत से उन्होंने अपने जीवन के अंतिम दिनों तक संस्थान को संपोषित करने का कार्य किया।

चटर्जी एक अत्यधिक समर्पित शिक्षक एवं अनुसंधानकर्ता थीं। वह अपने विद्यार्थियों की भलाई का बहुत ख्याल रखती थीं। उन्हीं के शोधार्थियों में से एक, एस. सी. पकराशी ने विद्यार्थियों पर उनके प्रभाव पर कुछ इस प्रकार से टिप्पणी दी: "... मैं 1952 में चटर्जी के शोध समूह के साथ एक पी–एच.डी. छात्र के रूप में जुड़ा ... उन दिनों खास तौर पर अपर्याप्त रसायनों एवं बहुत कम वित्तीय सहायता से चलने वाली विश्वविद्यालयों की कमियों भरी प्रयोगशालाओं में शोध कार्य के लिए वह समय बहुत ही कठिनाइयों भरा था तथा कॅरिअर के रूप में शोध का कोई खास भविष्य भी नहीं था। फिर भी वह अपने विद्यार्थियों को प्रोत्साहित एवं प्रेरित करतीं तथा उनमें प्रतिबद्धता, अखंडता, ईमानदारी, दृढ़ता और एक शोधकर्मी में होने वाले सभी आवश्यक गुणों को स्वयं अपने उदाहरण द्वारा प्रस्तुत करतीं। अध्यापक के रूप में वह अपने कार्य से कभी भी संतुष्ट नहीं रहती थीं। इंसान के रूप में वह एक उदार एवं समझदार महिला थीं। न केवल अपने साथियों के लिए बल्कि जो भी व्यक्ति उनके पास सहायता के लिए आता, उसकी सहायता के लिए वह सदैव तत्पर रहती थीं।

आसिमा चटर्जी का यह मत था कि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास में विश्वविद्यालय के अनुसंधान कार्य की एक केंद्रीय भूमिका होती है। भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास में विश्वविद्यालयों की भूमिका पर जोर देते हुए एक बार उन्होंने कहा था: "चूंकि वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक प्रशिक्षण का मेरुदंड होने के नाते विश्वविद्यालय के अनुसंधान कार्य अभी भी वैज्ञानिक प्रगति की अगुवाई करते हैं और देश में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की गुणवत्ता को आंकने का विश्वविद्यालय काफी अच्छा मानदंड प्रस्तुत करते हैं, इसलिए विश्वविद्यालयों को राष्ट्रीय स्तर पर अत्यधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिए। भारत जैसे विकासशील देश में विश्वविद्यालयों का सशक्तिकरण सर्वाधिक महत्व रखता है। एक शताब्दी से भी अधिक के अनुभव से यह पहले ही साबित हो चुका है कि शिक्षण और अनुसंधान दोनों साथ–साथ पुष्पित–पल्लवित होते हैं, जबकि इनका अलगाव विपरीत प्रभाव उत्पन्न करता है। एक ऐसे परिवेश में, जहां दोनों को समरुपता से विकसित किया जाए, दोनों से सर्वोत्तम परिणाम हासिल किए जा सकते हैं। शिक्षण एवं अनुसंधान यानी शिक्षा एवं खेल के इस संयोजन में ही विश्वविद्यालयों की वास्तविक शक्ति निहित होती है। यदि इन अकादमिक संस्थानों में अनुसंधान कार्य की अवहेलना की जाए, तो इन संस्थानों से बाहर होने वाला अनुसंधान कार्य भी एक लंबे समय तक फल–फूल नहीं सकता। यह कहा जाता है कि युवा शोधार्थियों के साथ निरंतर (प्रभावी) रूप से संपर्क न रखने वाला अनुसंधान संस्थान – चाहे वह किसी भी तत्त्वावधान में कार्य कर रहा हो विरले ही एक पीढ़ी तक रचनात्मक रूप से कार्य कर पाएगा। यह राष्ट्रीय विकास में विश्वविद्यालय अनुसंधान की केंद्रीय भूमिका तथा विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों, के बीच जिनमें राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं और उद्योग भी शामिल हैं घनिष्ठ संबंधों के परम महत्व को रेखांकित करता है।"

सन 1960 में चटर्जी को भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, नई दिल्ली का फैलो चुना गया। सन् 1961 में उन्हें *शांति स्वरूप भटनागर पुरस्कार* से नवाजा गया। उनके द्वारा प्राप्त अन्य पुरस्कार थे: कलकत्ता विश्वविद्यालय का *नागार्जुन पुरस्कार* और *स्वर्ण पदक* (1940), कलकत्ता विश्वविद्यालय का *प्रेमचंद रॉयचंद स्टूडेंटशिप* (1942), कलकत्ता विश्वविद्यालय का *मौअट पदक* (1944), इंडियन कैमिकल सोसाइटी का *सर पी. सी. रॉय पुरस्कार* (1974), विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रदत्त हरी ओम ट्रस्ट का *सर*

शेष पृष्ठ 10 पर

अभाज्य संख्याओं का गूढ़ संबंध

रिंटू नाथ
ई-मेल : rnath@vigyanprasar.gov.in

हाल ही में मेरे अंकल सर आर्थर कानन डायल नामक लेखक और चिकित्सक द्वारा सर्जित मशहूर गुप्तचर शरलॉक होम्स के कारनामों में गहरी रूचि लेने लगे थे। होम्स लंदन में रहने वाले एक निजी गुप्तचर थे जो आपराधिक मामलों को सुलझाने में अपनी बुद्धिमत्ता और फोरेंसिक विज्ञान संबंधी कुशलताओं के लिए प्रसिद्ध थे। इस कारण ही शरलॉक होम्स के तथ्यों और कारनामों पर आधारित अपने सुरागों के बारे में इन दिनों मेरे अंकल मुझसे पूछते रहते थे।

एक शाम, मेरे अंकल मुझे शरलॉक होम्स की कहानियों और उपन्यासों के कुछ तथ्यों के बारे में बता रहे थे। उन्होंने बताया कि होम्स ने चार उपन्यास और 56 लघु कहानियां लिखी थीं। उनका पहला उपन्यास 'ए स्टडी इन स्कारलेट' 1887 में बीटन्स क्रिसमस एनुअल में प्रकाशित हुआ था। चार को छोड़कर होम्स पर केंद्रित बाकी सभी कहानियों को होम्स के मित्र और जीवनी लेखक डॉ. वाटसन ने लिखा था; दो कहानियों (द ब्लैंच्ड सोल्जर और द लायन'स मेन) को होम्स के द्वारा स्वयं वर्णित किया गया था तथा दो अन्य कहानियां (द मेजारिन स्टोन और हिज लास्ट बो) अन्य पुरुष में लिखी गई थीं। कानन डायल ने एक दशक की अवधि में अपनी कहानियों की पहली श्रृंखला लिखी थी। अपने ऐतिहासिक उपन्यासों पर अधिक समय देने के लिए उन्होंने 1893 में द फाइनल प्राब्लम लिखा और उस समय होम्स अपने सबसे बड़े प्रतिद्वंद्वी प्रोफ़ेसर मोरिआरटी से लड़ते–भिड़ते हुए रिचेंबेक जलप्रपात से गिरने के बाद लगभग मृत्यु के कगार पर जा पहुंचे थे। आठ वर्षों तक जनता के दबाव को झेलने के बाद द एडवेंचर आफ द एम्प्टी हाउस कृति में कानन डायल होम्स को पुनः वापस लाए।

'गूगल, क्या तुम बता सकते हो कि शरलॉक होम्स की कहानियों या उपन्यासों के किन शीर्षकों की संख्याएं 2, 3, 4, 5, और 6 आती हैं?'

'इनमें से कम से कम दो के बारे में मैं बता सकता हूं। उनके दूसरे उपन्यास द साइन आफ द फोर में 4 की संख्या और 5 की संख्या द फाइव आरेंज पिप्स शीर्षक उनकी कहानी में आती है।'

'बहुत अच्छा प्रयास किया तुमने, गूगल। आओ, तुम्हें मैं अन्य जवाब देता हूं। उनकी कृति द एडवेंचर आफ द सेकेंड स्टेन में 2 की संख्या तथा 3 की संख्या उनकी कम से कम तीन कहानियों में है: *द एडवेंचर आफ द थ्री स्टूडेंट्स, द एडवेंचर आफ द थ्री गैरिदेब्स* और *द एडवेंचर आफ द थ्री गेबल्स*। द एडवेंचर आफ द सिक्स नेपोलियंस शीर्षक कहानी में 6 की संख्या आती है।'

'हां, इनमें से कुछ कहानियां मैंने पढ़ी हैं,' मैंने जवाब दिया।

'किस पते को दुनिया के सबसे प्रसिद्ध पते के रूप में जाना जाता है?' अंकल ने पूछा।

'यह पता है 221, बेकार स्ट्रीट, लंदन। यह वही अपार्टमेंट है जहां शर्लाक होम्स रहते थे', मैंने तुरंत जवाब दिया।

'लाजवाब, गूगल। क्या तुम्हें मालूम है कि यह पता वास्तव में लंदन में मौजूद है? पूरा पता है: 221 बेकार स्ट्रीट, लंदन, एनडब्ल्यू1 6 एक्सई, इंग्लैंड। सर आर्थर कानन डायल द्वारा लिखी कहानियों के अनुसार, शरलॉक होम्स और डॉ. जान एच. वाटसन 1881 से 1904 के दौरान 221 बी बेकार स्ट्रीट में ही रहते थे। इस घर को विशेष पुरातात्विक और ऐतिहासिक महत्वों के कारण अब सरकार द्वारा संरक्षित घोषित किया गया है, जबकि भावी पीढ़ियों के लिए इसके पहले मंजिल का रख–रखाव आज भी बड़ी संजीदगी के साथ, जैसा कि विक्टोरियाई काल में इसकी देखभाल की जाती थी, किया जा रहा है।

'आश्चर्यजनक बात है, 221 बेकार स्ट्रीट में होम्स आज भी अमर हैं। अंकल, क्या इस 221 संख्या में कोई खास बात है?'

'हां, यह एक रोचक सवाल है। संख्या 221 सचमुच एक बेहद दिलचस्प संख्या है। कुछ देर बाद मैं इस बारे में तुम्हें और भी कुछ बातें बताऊंगा। मैं कह सकता हूं कि 221 एक भाज्य संख्या है जो दो अभाज्य संख्याओं 13 और 17 का गुणनफल है।'

'अंकल, आपने अभी–अभी दो अपरिचित गणितीय पदों, अभाज्य संख्या एवं भाज्य संख्या, का उल्लेख किया। क्या आप इनके बारे में और विस्तार से बताएंगे?'

'एक अभाज्य संख्या 1 से बड़ा एक पूर्णांक होता है जो केवल स्वयं या 1 से ही विभाजित हो सकता है। 1 से बड़ी किसी धनपूर्ण संख्या, जो अभाज्य नहीं है, को भाज्य संख्या कहते हैं। उदाहरण के लिए, 5 एक अभाज्य संख्या है क्योंकि यह केवल 1 और 5 से विभाजित होती है, जबकि 6 एक भाज्य संख्या है क्योंकि 1 और 6 के अलावा 2 और 3 भी इसके भाजक हैं। संख्याओं का अभाज्य एवं भाज्य संख्याओं के रूप में यह विभाजन गणित की आधारशिला साबित हुआ है तथा यह ऐसा अभिलक्षण है जिसका गणितीय उपपत्तियों में बार–बार उपयोग हुआ है।'

'क्या संख्या जगत में सीमित अभाज्य संख्याएं ही हैं?' मैंने जानने के लिए पूछा।

'नहीं। वास्तव में अभाज्यों की संख्या अनंत है। दूसरे शब्दों में कहें तो अभाज्य संख्याओं के अनुक्रम 2,3,5,7,11,13..... का कभी अंत नहीं होता है। गणित की अधिकतर अनसुलझी पहेलियां भी अभाज्य संख्याओं से ही संबंधित हैं।'

'क्या संख्या 1 अभाज्य है?'

'नहीं, 1 एक अभाज्य संख्या नहीं है। पहली अभाज्य संख्या 2 है और यही एकमात्र सम अभाज्य संख्या है; बाकी सभी अभाज्य संख्याएं विषम होती हैं,' जवाब में अंकल बोले।

'क्या शून्य एक अभाज्य संख्या है?' जानने के लिए मैंने पूछा।

'तुमने बड़ा अच्छा प्रश्न पूछा, गूगोल। यह जानना रोचक होगा कि शून्य न तो अभाज्य और न ही भाज्य संख्या है। यह संख्या अभाज्य नहीं हो सकती क्योंकि इसके अनंत गुणक या गुणनखंड होते हैं। यह भाज्य संख्या भी नहीं है क्योंकि इसे अभाज्य संख्याओं के गुणनफल के रूप में नहीं व्यक्त किया जा सकता; एक गुणक अवश्य ही 0 होगा।'

'क्या सभी भाज्य संख्याओं को अभाज्य संख्याओं के गुणनफल द्वारा प्राप्त किया जाता है?'

'हां। चलो, मैं तुम्हें समझाता हूं। यदि हम किसी भाज्य संख्या का दो छोटी संख्याओं के रूप में गुणनखंड करें तो यह जानना होता है कि ये दोनों संख्याएं अभाज्य हैं या कि भाज्य। उदाहरण के लिए, 6 को हम इसके गुणनखंडों के रूप में ऐसे लिख सकते हैं: 2 x 3। संख्याएं 2 एवं 3 दोनों ही अभाज्य हैं। संख्या 18 को इसके गुणनखंडों के रूप में 2x9 की तरह हम लिख सकते हैं। यहां संख्या 2 अभाज्य है जबकि 9 अभाज्य नहीं है। लेकिन, संख्या 9 को 3 x 3 के रूप में लिखा जा सकता है, जहां 3 एक अभाज्य संख्या है। अतः संख्या 18 को हम ऐसे लिख सकते है: 18=2 x 3 x 3। किसी भी भाज्य संख्या, चाहे वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो, का हम दो छोटी संख्याओं के रूप में गुणनखंड कर सकते हैं। फिर हम यह देख सकते हैं कि इनमें से हर लघु गुणनखंड अभाज्य है या कि भाज्य। यदि इनमें से एक संख्या भाज्य है तो हम उसका पुनः गुणनखंड निकाल सकते हैं। यह प्रक्रिया सभी गुणनखंडों के अभाज्य संख्या निकलने तक चलती रहती है। यह अपने आप में रोचक है और हमें एक रोमांचक निष्कर्ष की ओर ले चलता है। जब एक भाज्य संख्या का अभाज्य संख्याओं के रूप में गुणनखंड निकाला जाता है तो ये अभाज्य संख्याएं उस भाज्य संख्या के लिए अनन्य होती हैं। उदाहरण के, गुणनखंडों के रूप में हम संख्या 30 को ऐसे लिख सकते हैं: 30=2x3x5। किसी भी अन्य समुच्चय की अभाज्य संख्याओं को गुणा करके हमें संख्या 30 प्राप्त नहीं हो सकती।'

'यह तो बड़ा रोचक है, अंकल।'

'यह रोचक तथ्य गणित की एक मूलभूत संकल्पना की ओर हमें ले जाता है और वह यह कि 1 से बड़ी प्रत्येक पूर्ण संख्या को हम अभाज्य संख्याओं के गुणनफल के रूप में एक और केवल एक ही तरीके से लिख सकते हैं; इसे गणित का एक मूलभूत सिद्धांत माना जाता है।'

'अब मेरी समझ में आ गया कि संख्या शून्य क्यों एक भाज्य संख्या नहीं हो सकती। शून्य को हम 0=0x2x3 या 0=0x7x17 या इसी प्रकार के अनंत तरीकों से लिख सकते हैं; जबकि एक भाज्य संख्या को अभाज्य संख्याओं के गुणनफल के रूप में एक और केवल एक ही तरीके से लिखा जा सकता है।

अतः संख्या शून्य एक भाज्य संख्या नहीं हो सकती। साथ–साथ हम यह भी देखते हैं कि संख्या शून्य के अनंत गुणनखंड हैं। इसलिए यह अभाज्य भी नहीं हो सकती। लेकिन, मुझे यह अब भी यह स्पष्ट नहीं है कि संख्या 1 अभाज्य क्यों नहीं है। क्या आप मुझे यह समझा सकते हैं?;

'यदि 1 को अभाज्य संख्या माना जाए तो गणित का मूलभूत सिद्धांत भंग हो जाता है; क्योंकि 30 को हम 30=2x3x5 तथा 0=1x2x3x5 के रूप में भी लिख सकते हैं। अतः 30 के गुणनखंड अनन्य नहीं होंगे। इसलिए 1 एक अभाज्य संख्या नहीं है,' जवाब में अंकल बोले।

'कृपया मुझे अभाज्य संख्याओं के बारे में और जानकारी दीजिए। ये अनेक रोमांचक विशेषताओं वाले लगते हैं।'

'अभाज्य संख्याओं का गुणनखंड इंटरनेट पर वित्तीय लेन–देन संबंधी सभी ई–कामर्स अनुप्रयोगों के मूल में है।'

'कृपया और विस्तार से समझाइए', मैंने आग्रह किया।

'जब हम किसी गुप्त डेटा, जैसे कि अपने बैंक खाते संबंधी सूचना, पासवर्ड आदि का विनिमय करते हैं तो इसकी संभावना रहती है कि कोई तीसरा व्यक्ति इस डेटा को गलत तरीके से हासिल कर ले और फिर उसका नाजायज फायदा उठाने की कोशिश करे। गुप्त डेटा की सुरक्षा के लिए ही 'पब्लिक की क्रिप्टोग्राफिक सिस्टम' (पी के सी एस) का विकास किया गया। यह प्रणाली अभाज्य संख्याओं पर आधारित हैं', अंकल ने समझाया।

'कृपया मुझे बताइए कि अभाज्य संख्याएं किस प्रकार गुप्त डेटा की सुरक्षा कर पाती हैं', मैंने जानने की गरज से पूछा।

'चलो, दो बहुत बड़ी अभाज्य संख्याएं, P1 और P2, लेते हैं। P1 और P2 को गुणा करो। तुम्हें संख्या N प्राप्त होगी जहां N=P1xP2 । यदि मैं तुम्हें संख्या N दूं और P1 और P2 निकालने को कहूं तो तुम्हें इसमें कठिनाई होगी। यहां P1 और P2 संख्या N के लिए अनन्य हैं, जिन्हें हम अभाज्य गुणक कहते हैं। उदाहरण के लिए, मान लो P1=53 और P2=59 तो संख्या N होगीः N=53x59=3127 । यह बिल्कुल सरल है। लेकिन, यदि मैं तुम्हें संख्या 3127 दूं और इसके अभाज्य गुणक निकालने के लिए कहूं तो इसमें तुम्हें कुछ समय लग जाएगा। हालांकि कम्प्यूटर प्रोग्राम की मदद लेने पर यह काम आसान हो जाएगा। लेकिन, यदि P1 और P2 दोनों ही बहुत बड़ी, मान लो 150 अंकों वाली, अभाज्य संख्याएं हैं तो कम्प्यूटर भी अभाज्य गुणकों को निकालने में काफी समय ले लेगा। पी के एस सी प्रणाली इसी पर ही आधारित है', जवाब में अंकल बोले।

'मैं हमेशा यह जानना चाहता था कि इंटरनेट पर ई–कॉमर्स संबंधी लेन–देन कैसे होता है। अब मैंने जाना कि गणित द्वारा ही यह संभव हो पाता है।'

'हां, गूगोल तुमने ठीक कहा। पी के सी एस प्रणाली के आविष्कार से पहले गुप्त कोडों द्वारा ही गुप्त संचार के कार्य को अंजाम दिया जाता था। उदाहरण के लिए, यदि व्यक्ति A किसी अन्य व्यक्ति B को कोई गोपनीय डेटा भेजना चाहे तो A और B दोनों ही एक ही गुप्त कोड का प्रयोग करेंगे। व्यक्ति A गुप्त कोड की मदद से डेटा की कोडित करेगा और व्यक्ति B उसी गुप्त कोड की मदद से डेटा को विकोडित करेगा। इसे सरल तरीके से समझने के लिए, मान लो कि A अपने बैंक के खाता संख्या "1789" को B को भेजना चाहता है। A "1789" को 7 से गुणा करके उसे कोडित करता है और प्राप्त संख्या "12523" को B, जिसे पहले ही यह मालूम है कि 7 गुप्त कोड है, को भेजता है। संख्या "12523" को प्राप्त करने पर B उसे 7 से भाग देता है और मूल संख्या "1789" को प्राप्त कर लेता है। लेकिन इस प्रणाली की सबसे बड़ी खामी यह है कि यदि B अनेक व्यक्तियों से ऐसे संदेश प्राप्त करता है तो उसे ऐसे अनेक गुप्त कोडों की आवश्यकता होगी। यह हर मामले में भिन्न ताला एवं कुंजी को खरीदने के सदृश होगा। यदि B ने 10 व्यक्तियों से ऐसे संदेश प्राप्त किए तो उसे 10 कुंजियों की आवश्यकता होगी। ऐसे में B को सभी 10 कुंजियों को सुरक्षित रूप से संभाल कर रखना होगा। इससे भिन्न एक ऐसी स्थिति पर विचार करो जिसमें B के पास केवल एक कुंजी और अनेक एक ही किस्म के ताले हैं। B इन तालों को उन सभी को, जिसके साथ वह लेन–देन करने का इच्छुक है, वितरित कर देता है और केवल चाबी को ही अपने पास रखता है। अब हर व्यक्ति गुप्त डेटा को B द्वारा प्रदत्त ताले का इस्तेमाल कर कोडित करेगा और उसे B को भेज देगा। अब चूंकि B के पास कुंजी है केवल वही भेजे गए गुप्त डेटा को विकोडित कर पाएगा। जरा गौर करो कि B को केवल एक ही कुंजी को सुरक्षित रखने की ओर ध्यान देना होगा। क्या तुम्हें यह सरल नहीं लगता है?'

'हां, अंकल यह सचमुच सरल है। अब जरा विस्तार से समझाइए कि इन तालों और कुंजियों को गणित में कैसे मूर्त रूप दिया जाता है?'

'पी के सी एस प्रणाली दोहरी कुंजियों, जिन्हें निजी कुंजी तथा सार्वजनिक कुंजी कहते हैं, पर आधारित होती है। जैसा कि मैंने अभी समझाया, सार्वजनिक कुंजी ताले के सदृश तथा निजी कुंजी गुप्त कोड के सदृश होती है। गुप्त सूचना सार्वजनिक कुंजी की सहायता से कोडित तथा निजी कुंजी की सहायता से विकोडित की जाती है। पी के सी एस प्रणाली को एक एल्गोरिथ्म, जिसे आ एस ए एल्गोरिथ्म कहते है द्वारा मूर्त रूप दिया जाता है। इस एल्गोरिथ्म का नामकरण इसके आविष्कारकर्त्ताओं रॉन राइवेस्ट, एडी शैमिर और लिओनार्ड एडलेमैन के नामों पर हुआ है।'

'निजी एवं सार्वजनिक कुंजियों को कैसे जनित किया जाता है तथा इसमें अभाज्य संख्याओं की क्या भूमिका होती है?' मैंने जानने के लिए पूछा।

'मान लो कि व्यक्ति B दो अभाज्य संख्याओं P1 और P2 का चयन करता है। P1 और P2 को गुणा करने पर तुम्हें संख्या N प्राप्त होगीः N=P1xP2 । अब सार्वजनिक कुंजी (N,e) है जहां e एक लघु सार्वजनिक घातांक है। B की यह सार्वजनिक कुंजी सभी को ज्ञात है। निजी कुंजी (N,d) है जो केवल B को ही ज्ञात है। यहां d कोई अन्य संख्या है जिसे किसी गणितीय फलन के प्रयोग द्वारा परिकलित किया जाता है। मान लो कि व्यक्ति A को कोई गुप्त सूचना 'm' व्यक्ति B तक पहुंचानी है। A सूचना 'm' को सार्वजनिक कुंजी (N,e) की मदद से कोडित करेगा। मान लो कि 'm', N एवं e से व्युत्पन्न कोडित डेटा 'c' है। इसे व्यक्ति B प्राप्त करेगा। अब निजी कुंजी (N,d) की सहायता से B गोपनीय सूचना 'm' को विकोडित कर लेगा।'

'अंकल, मेरे मन में एक सवाल उठा है। जब B कोडित डेटा 'c' को भेज रहा होता है तो किसी अप्राधिकृत व्यक्ति द्वारा उसे गलत तरीके से हासिल करने की संभावना भी हो सकती है। क्या वह अप्राधिकृत व्यक्ति गुप्त कोड को विकोडित कर सकता है यदि उसके पास सार्वजनिक कुंजी हो?'

'गूगोल, सार्वजनिक कुंजी तो अप्राधिकृत व्यक्ति सहित सभी को ज्ञात है। लेकिन कोडित डेटा 'c' को केवल निजी कुंजी, जो केवल B को ज्ञात है, के द्वारा ही विकोडित किया जा सकता है', अंकल ने जवाब दिया।

'क्या सार्वजनिक कुंजी द्वारा निजी कुंजी का अनुमान लगाया जा सकता है? आखिर, निजी एवं सार्वजनिक कुंजियों दोनों ही तो दो अभाज्य संख्याओं P1 और P2 की मदद से जनित की जाती हैं', मैंने जानने के लिए पूछा।'

'यह अनुमान लगा पाना लगभग असंभव है। यदि N1 और N2 दो विशाल अभाज्य संख्याएं हैं तो सुपरकम्प्यूटर को भी सार्वजनिक कुंजी एवं कोडित डेटा से निजी कुंजियों का अनुमान लगाने में हजारों वर्ष लग जाएंगे। अतः पी के सी एस प्रणाली अत्यंत सुरक्षित है।'

'लेकिन मैंने इंटरनेट बैंकिंग एवं इसी किस्म के ई–कॉमर्स संबंधित लेन–देन में धोखाधड़ी के मामलों के बारे में सुना है। यह कैसे संभव हो जाता हैं?' मैंने जानना चाहा।

'ये धोखाधड़ी के मामले पी.के.सी.एस. प्रणाली की विफलता के कारण नहीं होते हैं। आर एस ए लागरिथ्म पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करने में कभी भी नाकाम नहीं होगा। जो भी धोखाधड़ी के मामले सामने आते हैं वे सब लोगों की लापरवाही, जैसे यूजर आई डी, पार्सवर्ड आदि को भूलवश अन्य लोगों को प्रकट करने की गलतियों के कारण होती हैं।'

शरलॉक होम्स की जांच–पड़ताल की बात पर वापस लौटते हुए अब यह बताइए कि संख्या 221 में खास बात क्या है?' मैंने पूछा।

'गणित में, एक अर्धअभाज्य (जिसे बाइप्राईम या 2–ऑलमोस्ट प्राईम या पी क्यू नंबर भी कहते हैं) एक धन पूर्णांक संख्या होती है जो दो (आवश्यक नहीं कि वे अभिन्न हों) अभाज्य संख्याओं का गुणनफल होती है। जैसा कि मैंने पहले बताया था, संख्या 221 दो अभाज्य संख्याओं 13 और 17 का गुणनफल 221 है। इसलिए 221 एक अर्धअभाज्य संख्या होती है। पहली

शेष पृष्ठ 12 पर

प्लास्टिक–जनित प्रदूषण के खतरे: भावी पीढ़ी को चुनौती

दिपांजन घोष

श्रीपर्णा घोष

प्लास्टिक का हमारे दैनिक जीवन से गहरा संबध है। लेकिन, कचरा फेंकने की आदत ने प्लास्टिक प्रदूषण को एक ऐसी अप्रतिवर्ती स्थिति में ला कर खड़ा कर दिया है, जिसके कारण पर्यावरण तथा स्वास्थ्य दोनों के लिए अनेक जोखिम पैदा होने लगे हैं। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए तुरंत नवाचारी नीतियां अपनाने की आवश्यकता है।

पिछली शताब्दी में विज्ञान और प्रौद्यौगिकी की उन्नति के परिणामस्वरूप लोगों के लिए आराम से जीवन जीना संभव हो पाया है। प्रौद्योगिकी में जबरदस्त उन्नति से ऐसी नवीन वस्तुएं विकसित हुई हैं, जिनके महत्व का हमारे दैनिक जीवन में कोई अंत नहीं है। प्लास्टिक भी ऐसा ही एक अद्भुत पदार्थ है। हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र–कृषि, उद्योग, यातायात, आयुर्विज्ञान, खेल और मनोरंजन से लेकर अंतरिक्ष प्रौद्यौगिकी तक, सभी में प्लास्टिक का प्रयोग हो रहा है। लेकिन, प्लास्टिक के व्यापक प्रयोग से पर्यावरण प्रदूषण की समस्या भी पैदा हो गई है। प्लास्टिक अपशिष्ट की मुख्य समस्या इसका लंबे अरसे तक टिके रहना और जैवनिम्नीकरणीय न होना है, जिसके कारण यह हमेशा पर्यावरण में ही पड़ा रहता है।

प्लास्टिक का रसायन विज्ञान

पॉलिमर एक वृहदाणु है जो पुनरावृत्तीय संरचनात्मक इकाइयों या एकलकों से बना होता है। यूनानी भाषा में 'पॉलि' का अर्थ 'अनेक' और 'मेरोस' का अर्थ 'भाग' होता है। जॉन्स जैकब बर्ज़िलियस ने 1833 में 'पॉलिमर' शब्द को गढ़ा था। असल में, पॉलिमर व्यापक गुणधर्मों वाले प्राकृतिक और संश्लिष्ट दोनों किस्म के पदार्थों को समावेशित करने वाले यौगिकों का एक विशाल वर्ग है। इस अर्थ में अनेक प्राकृतिक वस्तुएं, जैसे कि रेशम, ऊन,पटसन, रबड़, चपड़ा आदि पॉलिमर ही हैं। प्लास्टिक भी पॉलिमर ही हैं, अतः आमतौर पर 'पॉलिमर' शब्द को प्लास्टिक के अर्थ में ही लिया जाता है।

प्लास्टिक कोई भी ऐसा संश्लिष्ट या अर्ध संश्लिष्ट कार्बनिक ठोस पदार्थ है जिसे जिसके आकार को ऊष्मा अथवा दाब के प्रयोग द्वारा विभिन्न आक़ारों में ढाला जा सकता है। प्लास्टिक उच्च अणु भार वाले विशेष प्रकार के कार्बनिक पॉलिमर होते हैं, जो मोड़ने पर भी टूटते नहीं है। ये मुख्य रूप से कार्बन और हाइड्रोजन के पॉलिमर होते हैं जिनमें ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, क्लोरीन, सल्फ़र और यहां तक कि सिलिकॉन भी संपूरक के रूप में मौजूद हो सकते हैं। आमतौर पर पेट्रो–रसायनों से प्राप्त किया जाने वाला प्लास्टिक संस्लिष्ट ही होता है, लेकिन कई आंशिक रूप से प्राकृतिक किस्म के भी होते हैं।

प्लास्टिक को मोटे तौर पर दो वर्गों में बांटा जाता है: तापसुघट्य और ताप दृढ़ पॉलिमर। तापसुघट्यों में पॉलिएथिलीन, पॉलिस्टाइरीन, पॉलीविनाइल क्लोराइड और पॉलिटेट्राफ्लोरोएथिलीन शामिल हैं। ये ताप–अस्थिर पदार्थ होते हैं, यानी यदि पर्याप्त ऊष्मा का प्रयोग किया जाए तो तापसुघट्य नर्म होकर पिघल जाते हैं। दूसरी तरफ, ताप दृढ़ प्लास्टिक ऊष्मा–स्थिर यौगिक होते हैं और एक बार ठोस रूप लेने के बाद इन्हें पिघलाया या पुनःआकार नहीं दिया जा सकता है।

आरंभिक इतिहास

शुरूआती प्लास्टिक अंडे और रक्त के प्रोटीन, जो कार्बनिक पॉलिमर हैं, की तरह केवल जैविक पदार्थ ही हुआ करते थे। मध्य–युग में लालटेन बनाने के लिए 'लाइ' (सोडियम अथवा पोटेशियम हाइड्रॉक्साइड का सांद्र विलयन) के प्रयोग से उपचारित केसीन (दुग्ध प्रोटीन) द्वारा पशुओं के सींगों के गुणों से मेल खाते पदार्थ का विकास किया गया। लेकिन, 1839 में चार्ल्स गुडइयर की वल्कनीकरण की खोज से प्राकृतिक रबड़ से प्राप्त ताप दृढ़ पदार्थ के रूप में सिंथेटिक प्लास्टिक के विकास को बढ़ावा मिला। सन् 1907 में बेल्जियम के रसायनविद् लियो बैकेलैंड द्वारा प्रथम पूर्णतः संश्लिष्ट ताप दृढ़ पॉलिमर बैकेलाइट का विकास किया गया। इसके बाद 1927 में बी. एफ. गुडरिक कंपनी से संबद्ध अमेरिकी रसायनविद् वाल्डो सेमोन द्वारा विश्व के दूसरे सर्वाधिक बिकने वाले पॉलिविनाइल क्लोराइड (पीवीसी) प्लास्टिक का विकास किया गया। इसी क्रम में 1937 में पॉलिस्टाइरीन अथवा थर्मोकोल, जो एक पुनःचक्रणीय ताप–सुघाट्य पदार्थ है (या जो कभी–कभी एक ताप–दृढ़ पदार्थ जैसा भी व्यवहार करता है) की खोज की गई। पॉलीप्रोपीलीन एक ताप–सुघट्य पॉलिमर है जिसका विकास 1957 में किया गया। इस अवधि में कुछ बहुराष्ट्रीय कंपनियों से जुड़े रसायनविदों के व्यक्तिगत व सामूहिक प्रयासों से तीन महत्वपूर्ण प्लास्टिक बहुलकों–पॉलिथीन या पॉलिएथिलीन (बहुतायत में उपयोग किया जाने वाला प्लास्टिक), पॉलिटेट्राफ्लोरोएथिलीन या टेफ्लॉन (जिसका खाना पकाने के बर्तनों पर न चिपकने वाली परत को बनाने में मुख्य रूप से इस्तेमाल होता है), और सिलिकॉन (आजकल कॉस्मेटिक सर्जरी के लिए एक प्रचलित पदार्थ) की खोज हुई।

सर्वत्र व्याप्त है प्लास्टिक

प्लास्टिक टिकाऊ व हल्का होता है और इसे आसानी से विभिन्न आकारों में ढाला जा सकता है तथा भिन्न–भिन्न उपयोगकर्त्ताओं की आवश्यकतानुसार इसे रूपांतरित किया जा सकता है। हल्का होते हुए भी मजबूत एवं किफायती होने के विशेष गुणों के कारण बालपेन से लेकर चूड़ियों तक, रेफ्रिजरेटर से लेकर वाटर–फ़िल्टर तक, सामान्य बाल्टी से लेकर गर्म थर्मोवेयर तक सभी वस्तुओं के रुप में प्लास्टिक समाज के प्रत्येक वर्ग की जीवन शैली और घरेलू सुख–सुविधा में बदलाव ले आया है। प्लास्टिक ने हमारी गृहणियों के जीवन को आसान, बेहतर और सुखी बना दिया है। लाखों लोगों तक प्लास्टिक रोजाना पहुंचता है। किरयाने के सामान से लेकर पीने के पानी और खाद्य तेल से लेकर खेत की सब्जियों तक, सभी वस्तुएं प्लास्टिक के अंदर पैक होती हैं। कंघे, बटन, छतरी की मूठ, खिलौने,

आधुनिक सभ्यता में प्लास्टिक का असंख्य रूपों में विश्व भर में उपयोग किया जा रहा है

जल को एकत्र करने व एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाने के लिए प्लास्टिक के पाइपों और डिब्बों का प्रयोग

और अन्य कई वस्तुएं बनाने में पॉलिस्टाइरीन का प्रयोग किया जाता है, जबकि पॉलीवाइनिल क्लोराइड का प्रयोग नलकारी या प्लम्बिंग, गटर, गृह–पार्श्विका, दरवाजों एवं खिड़कियों, गलीचों, जूते के तलों, बरसाती कोट तथा केबलों पर विद्युतरोधी के रूप में किया जाता है। विनाइल क्लोराइड में कार्बनिक थैलेट और फॉस्फेट मिलाकर सॉफ्ट पॉलिविनाइल क्लोराइड (PVC) तैयार किया जाता है, जिसका उपयोग खाद्य–पदार्थों की पैकेजिंग, सॉफ्ट खिलौनों, कपड़ों और इसी तरह की अन्य वस्तुओं के लिए किया जाता है। इसके अलावा तेज़–गति की कारों व दुपहिया वाहनों के विभिन्न हिस्सों को बनाने के लिए अत्यंत मज़बूत, धक्का–सह और लचीले प्लास्टिक का भी विकास किया जा चुका है।

चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में मरीजों को और अधिक सुरक्षा और आसानी प्रदान कर प्लास्टिक के प्रयोग ने क्रांति ला दी है। बड़ी संख्या में चिकित्सकीय एवं सर्जिकल उपकरण जैसे कि डिजपोसेबल सुइयां, रक्त थैलियां और अंतःशिरा नलिकाएं, कैथेटर, सर्जिकल दस्ताने, हृदय वाल्व, कूल्हों और घुटनों के जोड़ तथा कृत्रिम अंग आदि प्लास्टिक के ही बने होते हैं। उपर्युक्त उपकरणों में प्रयुक्त प्लास्टिक पॉलिमर का कोई इतर प्रभाव भी नहीं पड़ता क्योंकि यह मरीज के रक्त और शरीर में मौजूद तरल पदार्थों के साथ कोई अभिक्रिया नहीं करता है। साथ ही ये सभी वस्तुएं किफ़ायती, मजबूत, जंग–रोधी और अक्रिय प्रकृति की होती हैं और इन्हें आसानी से किसी भी आकार में ढाला जा सकता है।

भारत में प्लास्टिक उद्योग में खूब विकास हो रहा है। अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र जैसे कि अवसंरचना, निर्माण–कार्य, कृषि, उपभोक्ता वस्तुएं, दूरसंचार और पैकेजिंग में प्लास्टिक का प्रयोग होता है। लेकिन प्लास्टिक का प्रयोग आजकल केवल इन्हीं क्षेत्रों तक सीमित नहीं है। प्लास्टिक प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए अभिनव नवाचारों से नई आशाओं का संचार हो रहा है। अब एक किस्म के अवशोषक प्लास्टिक का विकास हुआ है जो भारी परिणाम में अपने अंदर जल को अवशोषित करके रख सकता है। इस प्रकार के प्लास्टिक का उपयोग शिशुओं के लिए डायपर बनाने में हो रहा है। यह खोज शुष्क रेगिस्तानी इलाकों में खेती की संभावना के द्वार खोलेगी। इस अवशोषक प्लास्टिक के प्रयोग से पौधों की जड़ों में बूंद–बूंद कर पानी पहुंचाकर सफ़लतापूर्वक फसलें उगाई गई हैं। धात्विक तारों को प्रकाशिक तंतुओं से बदलकर विद्युत एवं दूरसंचार उद्योगों में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। इस प्रकार के प्लास्टिक का आविष्कार भी हो चुका है जिससे होकर विद्युत का संचालन हो सकता है। कई मामलों में ऐसे प्लास्टिक की विद्युत सुचालकता तांबे के तार से भी अधिक होती है।

सारणी– 1. प्लास्टिक कचरे के उत्पन्न होने के स्रोत

घरः	थैले, बोतलें, डिब्बे, कचरा डालने के थैले
स्वास्थ्य एवं चिकित्सा	डिस्पोजेबल सिरिंजें, ग्लूकोज़ की बोतलें, रक्त थैलियां, अंतःशिरा नलिकाएं, कैथेटर, सर्जिकल दस्ताने
होटल एवं खान–पान व्यवसाय	पैकेजिंग की वस्तुएं, मिनरल वाटर की बोतलें, प्लास्टिक की थालियां, गिलास, चम्मच
हवाई/रेल यात्रा	मिनरल वाटर की बोतलें, प्लास्टिक की प्लेटें, गिलास, चम्मच, प्लास्टिक की थैलियां

प्लास्टिक के कचरे के ढेर भद्दे और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं

प्लास्टिक के ख़तरे

प्लास्टिक का इतना अधिक प्रयोग हो रहा है कि पर्यावरण और मनुष्य के स्वास्थ्य पर भी इसका व्यापक अधिप्रभाव पड़ रहा है। अधिकतर पेट्रोरसायन–आधारित प्लास्टिक जैवनिम्नीकरणीय नहीं होते हैं। इसके अलावा कचरा फेंकने की आदत के कारण हर वर्ष भारी मात्रा में प्लास्टिक कचरा उत्पन्न होता है (सारणी 1)। इस कचरे का एक बड़ा अंश ज़मीन पर फैल कर खुले नालों में पहुंच जाता है अथवा कचरे के ढेर में तब्दील हो जाता है। प्लास्टिक कचरा शहर की गलियों, पार्कों एवं उद्यानों, नदी किनारों, समुद्रतटों और यहां तक कि पर्वतों या अन्य पर्यटन स्थलों तक भी पहुंच जाता है। लापरवाही से फेंकी गई प्लास्टिक की थैलियों के कारण अपवाह तंत्र अवरुद्ध हो जाते हैं तथा मिट्टी की सरंध्रता नष्ट हो जाती है, जिससे भूमिगत जल पुनर्भरण की समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। अपवाह तंत्र में अवरोध पैदा होने से असुविधा होती है और उसके रख–रखाव में कठिनाइयां पैदा होती हैं। इस कारण पर्यावरण स्वच्छ नहीं रह पाता और स्वास्थ्य के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है तथा जल–जनित बीमारियां फैलने लगती हैं। प्लास्टिक मृदा की सूक्ष्मजैविक गतिविधियों में बाधा डालता है और अंततः मिट्टी का उपजाऊपन कम होने लगता है। चरते वक्त प्लास्टिक की थैलियां अथवा अन्य वस्तुएं दुर्घटनावश खा लेने पर पशुओं का दम घुट सकता है। आविषालु रंजकों के निक्षालन तथा रोगाणुओं के फैलने के कारण प्लास्टिक की थैलियां खाद्य–पदार्थों को भी संदूषित कर सकती हैं।

पारंपरिक प्लास्टिक जानवर और मनुष्य दोनों की प्रजनन समस्याओं से भी जुड़ा है। अध्ययनों से पता चला है कि इससे मनुष्य के शुक्राणु की मात्रा एवं गुणवत्ता में कमी, जननांगीय अपसामान्यताओं और स्तन कैंसर की घटनाओं में वृद्धि हुई है। प्लास्टिक, खासकर पी वी सी को जलाने से आविषालु यौगिक, जैसे कि डाइऑक्सिन और फ्यूरान भी वायुमंडल में उत्सर्जित होते हैं। पी वी सी के जलने से हाइड्रोजन क्लोराइड भी बनता है। चूंकि हाइड्रोजन क्लोराइड वायु में जल–वाष्प के साथ आसानी से संयोग कर हाइड्रोक्लोरिक अम्ल बनाता है, इसलिए पी वी सी को जलाना मनुष्य के स्वास्थ्य और पर्यावरण दोनों के लिए ही अत्यधिक हानिकर है।

नालियों में पड़ा प्लास्टिक स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचा सकता है

एक बार प्लास्टिक उदरस्थ कर लेने पर जानवर मर सकते हैं

कुछ प्लास्टिकों में कई तरह के आविषालु योगज जैसे एडिपेट्स, थैलेट्स आदि होते हैं। हाल ही के अध्ययनों से पता चला है कि पॉलिएथिलीन टेरेफ्थैलेट यानी पीईटी से बनी बोतलों का पुनः प्रयोग सचमुच ख़तरनाक हो सकता है। कुछ समय बाद पीईटी का विघटन होने लगता है और बोतल का पुनः प्रयोग करने पर उसमें रखे पेय पदार्थ में वह थैलेट व एंटिमनी (Sb) छोड़ने लगता है। टॉक्सिन बिस (2–ऐथिलहेक्सिल) एडिपेट अथवा डीईएचए पुनःचक्रित किए गए पीईटी की बोतलों के पानी में भी मिल जाता है। डीईएचए को यकृत एब्सेस, श्वेतरक्तता यानी ल्यूकेमिया, अंतःस्रावी तंत्र में अवरोध और अन्य प्रजनन संबंधी समस्याएं पैदा करने वाला पाया गया है। ऐसा भी शक है कि यह रसायन मनुष्य में कैंसर भी पैदा कर सकता है।

प्लास्टिक प्रदूषण कैसे दूर करें

यूं तो प्लास्टिक सामान्यतः आविषालु नहीं होते, लेकिन जैवनिम्नीकरणीय न होने के अवगुण के कारण ये प्रदूषण फैलाते हैं। प्लास्टिक के निपटान की समस्या सामने आती है। भस्मीकरण अथवा पुनःचक्रण ही इसका एकमात्र विकल्प है। विकसित देशों में प्लास्टिक कचरे के निपटान के लिए प्लास्टिक उद्योग ने पर्यावरण हेतु स्वीकार्य विधियों की आवश्यकता महसूस की है तथा इसके लक्ष्य एवं मिशन निर्धारित किए हैं। इनमें से प्रमुख मिशन हैं जापान स्थित प्लास्टिक मैनेजमेंट इस्टिट्यूट; यूरोपियन सेंटर फॉर प्लास्टिक्स इन एंवायरनमेंट; तथा मलेशिया स्थित द प्लास्टिक वेस्ट मैनेजमेंट टास्क फ़ोर्स। निर्माणकर्ताओं, नागरिक प्राधिकारियों, पर्यावरणविदों और आमजन ने प्लास्टिक के प्रयोग हेतु निर्धारित दिशा–निर्देश अथवा मानक एवं आचार संहिता के अनुरूप इसके प्रयोग की आवश्यकता को स्वीकारने की पहल कर दी है।

लेकिन अच्छी खबर यह है कि भारत भी प्लास्टिक के पुनःचक्रण के मामले में पीछे नहीं रहा है। प्लास्टिक के बढ़ते उपयोग के साथ–साथ कूड़ा बीनने वालों, कचरा इकट्ठा करने वालों, कचरे के व्यापारियों और पुनःचक्रण उद्यमों के माध्यम से प्लास्टिक कचरे को इकट्ठा करने के लिए एक देशव्यापी नेटवर्क लगभग पिछले दशक से समग्र देश में फैल चुका है। हमारे देश में इकट्ठा होने वाले प्लास्टिक कचरे के 50–70 प्रतिशत का पुनःचक्रण होता है तथा विभिन्न प्लास्टिक उत्पादों के निर्माण में इसका उपयोग किया जाता है।

अंत में

अब प्रश्न यह उठता है कि प्लास्टिकजनित प्रदूषण पर कैसे काबू पाया जाए? कहने की आवश्यकता नहीं कि प्लास्टिक के अत्यधिक प्रयोग के विरुद्ध कानून बनाना या सामाजिक रूप से प्लास्टिक का बहिष्कार करना इस समस्या का स्थाई समाधान नहीं है। लेकिन, प्लास्टिक से निर्मित वस्तुओं को काम में लाने के बाद फेंकने की बजाए पुनःचक्रण प्रक्रिया द्वारा हम उन्हें लाभदायक बना सकते हैं। लेकिन, वर्णकों या अन्य योगजों के कारण कुछ प्लास्टिकों को पुनःचक्रित या भष्मित नहीं किया जा सकता। प्लास्टिक को जलाना मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण दोनों के ही लिए हानिकारक है, जबकि पुनःचक्रण एक जटिल प्रक्रिया है। ऐसे में इसका समाधान क्या है? पर्यावरण–सम्मत और जैवनिम्नीकरणीय प्लास्टिकों का निर्माण वर्तमान समय की मांग है। हालांकि आंशिक रूप से जैवनिम्नीकरणीय प्लास्टिक विकसित किए जा चुके हैं और इनका प्रयोग भी हो रहा है, लेकिन पेट्रो–रसायनों की बजाए नवीकरणीय स्टार्च पर आधारित पूर्णतः जैवनिम्नीकरणीय प्लास्टिक हाल ही में विकसित किए गए हैं और ये अभी व्यावसायीकरण के आरंभिक चरण में हैं।

शिक्षण के अलावा दिपांजन घोष एक जाने–माने लोकप्रिय विज्ञान लेखक भी हैं। अब तक उनके लगभग 200 लेख प्रकाशित हो चुके हैं। विज्ञान लोकप्रियकरण से जुड़े होने के अलावा वह विज्ञान मेलों, प्रकृति दर्शन शिविरों का आयोजन करते एवं रेडियो वार्ताएं भी देते हैं। ई–मेलः dpanjanghosh@gmail.com

श्रीपर्णा घोष पर्यावरणीय समस्याओं, प्रकृति संरक्षण और शिक्षा के माध्यम से बच्चों में जागरूकता फ़ैलाने हेतु कार्यरत ईकोकैम्पर्स (बर्धमान स्थित एक गैर–सरकारी संगठन) से जुड़ी हुई हैं।

पृष्ठ 5 का शेषांश **आसिमा चटर्जीः भारतीय विज्ञान कांग्रेस की प्रथम महिला प्रधानाध्यक्ष)**

सी. वी. रामन् पुरस्कार (1982), इंडियन केमिकल सोसाइटी का *प्रोफ़ेसर पी. के. बोस पुरस्कार* (1988), तथा भारतीय विज्ञान कांग्रेस संघ द्वारा प्रदत्त *सर आशुतोष मुख़र्जी मेमोरियल स्वर्ण पदक* (1989)। उन्हें बंगाल चैम्बर्स ऑफ़ कॉमर्स द्वारा *वीमेन ऑफ़ द ईयर (1975)* चुना गया। सन् 1975 में भारत सरकार ने उन्हें अपने प्रतिष्ठित *पदम् भूषण* सम्मान से अलंकृत किया। चटर्जी को भारत के महामहिम राष्ट्रपति द्वारा *राज्य सभा* की सदस्या भी चुना गया। वे इस पद पर फरवरी 1982 से मई 1990 तक रहीं।

चटर्जी ने देश के आम–जन में सोचने के वैज्ञानिक ढंग अथवा वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित करने के महत्व पर बल दिया। उनका मानना था कि भारतीय विज्ञान कांग्रेस इस महत्वपूर्ण कार्य में एक प्रभावी भूमिका निभा सकता है और उसे यह भूमिका निभानी भी चाहिए। भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अध्यक्षीय संबोधन में उन्होंने कहाः ".... यदि सोचने के वैज्ञानिक ढंग को उचित तरीके से विकसित किया जाए तो इससे देश की जनता को विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की प्रगति के सभी लाभों को प्राप्त करने में सहायता मिलेगी। लेकिन वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार मात्र शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं होना चाहिए। इसका विस्तार गांवों में भी प्रभावी ढंग से किया जाना चाहिए। इस क्षेत्र में भी भारतीय विज्ञान कांग्रेस अपनी प्रभावी भूमिका निभा सकता है। वैज्ञानिक सूचना का अधिक व्यापक और सुव्यवस्थित प्रसार अवश्य ही जनशिक्षा का कार्य करेगा।

23 नवंबर 2006 को कोलकाता में 89 वर्ष की आयु में चटर्जी का देहांत हुआ।

संदर्भः

1. पकराशी, एस. सी., "आसिमा चटर्जी", *करंट साइंस,* खंड 92, सं. 9, पृष्ठ 1310, 2007।
2. पकराशी, एस. सी., "आसिमा चटर्जी", इन *लीलावती'ज डॉटर्सः द वीमेन साइंटिस्टस ऑफ़ इंडिया,* संपा. रोहिणी गोडबोले और राम रामास्वामी, बेगलुरुः इंडियन एकेडमी ऑफ़ साइंसेस, 2008।
3. *प्रोफाइल्स इन साइंटिफिक रिसर्च कॉन्ट्रिब्यूशन ऑफ़ द फेलोज,* खंड.2, नई दिल्लीः इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी, 1995।
4. चटर्जी, आसिमा, "साइंस एंड टेक्नोलॉजी इन इंडियाः प्रेजेंट एंड फ्यूचर" (1975 की भारतीय विज्ञान कांग्रेस का अध्यक्षीय संबोधन) *द शेपिंग ऑफ़ इंडियाः इंडियन साइंस कांग्रेस एसोसिएशन प्रेज़िडेंशियल एड्रेसेज़ में संकलित,* खंड.2: 1948:1981, हैदराबादः यूनिवर्सिटीस प्रेस, 2003(इस खंड में चटर्जी पर एक संक्षिप्त जीवनवृत्त भी उपलब्ध है)।
5. इंटरनेट पर उपलब्ध स्रोत।

(अनुवादः रूपेंद्र शर्मा) ■

भारतीय विज्ञान कांग्रेस का शताब्दी अधिवेशन

रिन्टू नाथ
ई–मेलः rnath@vigyanprasar.gov.in

भारतीय विज्ञान कांग्रेस ने 1914 से भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अनुसंधान और खोजों की विरासत को आगे बढ़ाने का काम किया है। वर्ष 2013 भारतीय विज्ञान कांग्रेस की स्थापना का शताब्दी वर्ष है, और इसका मुख्य विषय है : ''भारत के भविष्य को आकार देने के लिए विज्ञान।'' इसमें रंचमात्र भी संदेह नहीं कि भारतीय विज्ञान कांग्रेस का शताब्दी समारोह भारतीय विज्ञान के इतिहास की एक बडी घटना होगी।

भारतीय विज्ञान कांग्रेस संघ (भाविकासं) भारतीय वैज्ञानिक समुदाय का अग्रणी और प्रमुख प्रतिनिधि संगठन है। भाविकासं की स्थापना भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के लिए की गई थी। यह देश के सबसे पुराने वैज्ञानिक संगठनों में से एक है जिसमें भारतीय विज्ञान को ढ़ालने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। भारतीय विज्ञान कांग्रेस का शताब्दी समारोह इस महान संस्थान के विषय में और अधिक जानकारी प्राप्त करने का अनुपम अवसर प्रदान करता है।

भारतीय विज्ञान कांग्रेस भारतीय वैज्ञानिक समुदाय के लिए एक बड़ी घटना होती है और इसमें 15000 से अधिक प्रतिनिधि भाग लेते हैं। इसमें तकनीकी सत्र, पैनल परिचर्चाएं, लोक व्याख्यान, दर्शन – भ्रमण, 'भारत का गौरव' प्रदर्शनी तथा मूल विचार संगोष्ठियां होती हैं। आशा है कि शताब्दी अधिवेशन, उभरती वैश्विक ज्ञान अर्थव्यवस्था में, देश की प्रगति का नवपथ निर्माण करने के लिए विज्ञान और समाज के सभी पणधारियों को साथ आने के लिए मंच प्रदान करेगा।

भारतीय विज्ञान कांग्रेस शताब्दी वर्ष के दौरान, हॉल ऑफ प्राइड भारत के प्रथम प्रधानमंत्री स्वर्गीय पंडित जवाहर लाल नेहरू, जो 1947 में आयोजित भारतीय विज्ञान कांग्रेस के महाध्यक्ष भी थे, तथा इसके प्रथम महाध्यक्ष स्वर्गीय सर आशुतोष मुखर्जी के जीवन और उपलब्धियों का समारोह भी मनाएगा।

100 वीं भारतीय विज्ञान कांग्रेस की मेजबानी कोलकाता करेगा। प्रसंगवश, 1914 में प्रथम भारतीय विज्ञान कांग्रेस का आयोजन भी कोलकाता में ही हुआ था। भारतीय विज्ञान कांग्रेस संघ के शताब्दी वर्ष में प्रधानमंत्री डा. मनमोहन सिंह इसके महाध्यक्ष हैं । वह पहले प्रधानमंत्री हैं जो भाविकासं के महाध्यक्ष नियुक्त किए गए हैं। 2 जून 2012 को कोलकाता में भाविकासं शताब्दी के शुभारंभ कार्यक्रम में प्रधानमंत्री ने उपस्थित रह कर उस

भारतीय विज्ञान कांग्रेस शताब्दी समारोह : महाध्यक्ष का संदेश

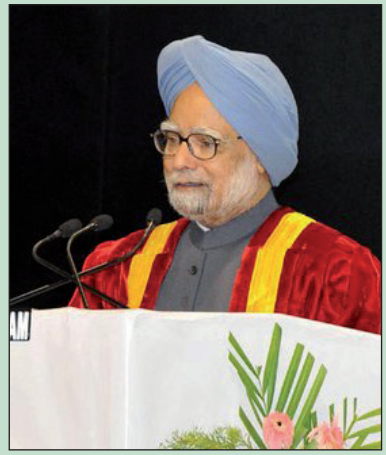

भारतीय विज्ञान कांग्रेस संघ के शताब्दी वर्ष में इसके महाध्यक्ष के पद को सुशोभित करना मेरे लिए परम सम्मान एवं गौरव की बात है। इस सम्मान को मैंने वैज्ञानिक समुदाय के प्रति अत्यन्त विनम्रता का प्रदर्शन करते हुए ग्रहण किया है तथा इस चुनौती को अपने देश के उन करोड़ों लोगों के प्रति उत्तरदायित्व की गहन भावना से स्वीकार किया है जिनकी गरीबी, अज्ञानता, भूख और बीमारी की स्थिति को बदलने में विज्ञान एक ताक़त बन सकता है।

भारतीय विज्ञान कांग्रेस संघ की अभिकल्पना सौ वर्ष पूर्व भारतीय विज्ञान के दूरदर्शी युग प्रणेताओं द्वारा की गई थी। युग की भावना तथा आत्मनिर्भरता एवं देशभक्ति के मूल्य इसमें प्रतिबिम्बित हुए थे। जे. सी. बोस, सी. वी रामन्, एस. एन. बोस, श्रीनिवास रामानुजन, मेघनाद साहा जैसे अनेक तेजस्वी वैज्ञानिकों ने तमाम बाधाओं के बावजूद दुनिया में अपना नाम प्रतिष्ठित किया। भारतीय विज्ञान और वैज्ञानिकों की प्रत्येक पीढ़ी ने, वैज्ञानिक अन्वेषण के उन क्षेत्रों में अनुसंधान करके, जो विकसित देशों की बपौती समझे जाते थे, इन महान हस्तियों द्वारा स्थापित शानदार परम्पराओं को आगे बढ़ाया है। उनकी उपलब्धियों के लिए मैं उन्हें शत–शत नमन करता हूं।

विज्ञान की क्षमता का दोहन, जो हमारे देश के लिए तथा मानव जाति के लिए सेवा प्रदान करने मे हो रहा है, आज एक चुनौती है। संसाधनो की कमी ने अक्सर हमारी वैज्ञानिक प्रतिभा को जुटाने तथा हमारी विशिष्ट आवश्यकताओं के लिए वैज्ञानिक उपलब्धियों को लागू करने के क्षमता को प्रभावित किया है। पिछले कुछ दशको में सतत होने वाले उच्च आर्थिक विकास के फलस्वरूप अब भारतीय विज्ञान के सपनों में पंख लग सकते हैं। वैज्ञानिकों के समुदाय के लिए यह जरूरी है कि वे हमारी ज़मीनी सच्चाई के साथ जुड़े रहे तथा हमारी समस्याओं को अपने संज्ञान में लें ताकि समेकित विकास एक हकीकत बन सके। मुझे आशा है कि भावैकांसं का शताब्दी समारोह उस सामाजिक चेतना, जिसने एसोसिएशन के संस्थापकों को अनुप्रेरित किया, को याद करने का एक अवसर होगा। यही कारण है कि वर्ष 2012–13 के लिए विज्ञान कांग्रेस के विषय को ''भारत के भविष्य को आकार देने वाला विज्ञान'' चुना गया है।

कांग्रेस के 100वां वार्षिक सत्र का आयोजन 3–7 जनवरी 2013 के दौरान कोलकाता में हो रहा है। यह वह शहर है जहां से एसोसिएशन की यात्रा शुरू हुई थी। अभी हाल ही में हमने भारत के दो प्रतिष्ठित सपूतों, गुरूदेव टैगोर और आचार्य पी.सी.रे, की 150वीं वर्षगांठ मनाई जिनमें से एक मानवतावादी और दूसरे वैज्ञानिक हैं। उन्होंने अपने–अपने तरीकों से विज्ञान कांग्रेस आंदोलन से जुड़ी भावना का प्रतिनिधित्व किया। आंदोलन की यह विरासत 100 वें सत्र को कोलकता और कलकत्ता विश्वविद्यालय से जोड़ने का काम करता है। यह आंदोलन के इतिहास को हमें पुनर्जीवित करने का अक्सर प्रदान करेगा।

एसोसिएशन परिषद् तथा सलाहकार परिषद, जो एक साथ रहकर हमारी दृष्टि को भारतीय विज्ञान का रुप देने के लिए कार्य कर रहे हैं, इन सभी का मैं आभारी हूं। हम सबको इस शताब्दी वर्ष पर अधिक उत्पादक और उद्देश्यपूर्ण तरीके से विचार करना चाहिए।

मैं भारत के वैज्ञानिक समुदाय को इस अवसर पर आधुनिक भारत के भविष्य को आकार देने के लिए आमंत्रित करता हूं। मैं उन सभी प्रतिभागियों, जो भारतीय विज्ञान कांग्रेस के शताब्दी वर्ष मे भाग ले रहे है, का गर्मजोशी के साथ स्वागत करता हूं।

अवसर को शोभा प्रदान की। प्रधानमंत्री ने आशा व्यक्त की कि ''वैज्ञानिक इस शताब्दी वर्ष समारोह का उपयोग एक ऐसी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी नीति की रूपरेखा पर चिंतन के लिए कर सकते हैं जो विज्ञान को देश में विकास का अग्रदूत बनाने की हमारी आकांक्षा को प्रतिबिम्बित करे। ''

विज्ञान कांग्रेस के शताब्दी समारोह के अवसर का उपयोग, सभी के द्वारा, विशेषकर युवकों में, विज्ञान के प्रति रूचि उत्पन्न करने, सामान्य जन के दैनिक जीवन में विज्ञान के महत्व को समझने तथा समाज के सभी वर्गों के बीच वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रसार करने के लिए होना चाहिए, जैसा कि हमारे प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने सोचा था।

सर आशुतोष मुखर्जी

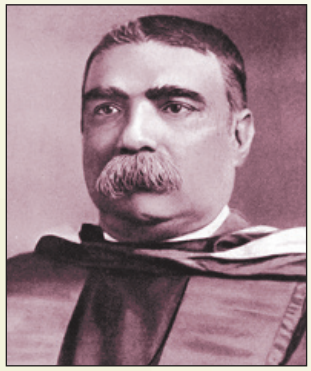

आशुतोष मुखर्जी आधुनिक भारत के निर्माताओं में से एक थे। वह एक प्रमुख गणितज्ञ, न्यायविद् एवं शिक्षाविद् थे। मुखर्जी मुख्यतः देश में उच्च शिक्षा का पथ प्रशस्त करने के लिए अपनी अग्रणी भूमिका के लिए जाने जाते हैं। कोलकाता विश्वविद्यालय के कुलपति की हैसियत से विज्ञान में स्नातकोत्तर शिक्षण और अनुसंधान को प्रोत्साहित करने में उन्होंने अग्रणी भूमिका निभाई। उन्होंने कोलकाता विश्वविद्यालय को नई दिशा देकर पुरानी धारा को बदल दिया। पहली बार भारत में विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षण और अनुसंधान को समेकित करने का उन्होंने कार्य किया।

आशुतोष मुखर्जी ने एशियाटिक सोसाइटी, कोलकाता के प्रांगण में 1914 में आयोजित पहली भारतीय विज्ञान कांग्रेस की अध्यक्षता की। भारतीय विज्ञान कांग्रेस संघ के उद्देश्यों और कार्यक्षेत्र के विषय में टिप्पणी करते हुए सर आशुतोष मुखर्जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था, ''भाविकासं का गठन, वैज्ञानिक खोज को एक व्यवस्थित दिशा और प्रबल आवेग देने, देश के विभिन्न भागों में विज्ञान में रूचि रखने वाले व्यक्तियों और समुदायों के सहसंबंधों को प्रोन्नत करने, सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक विज्ञान के विषयों की ओर आम व्यक्ति का ध्यान खींचने और इसकी प्रगति को अवरूद्ध करने वाली आमजन संबंधित कमियों को दूर करने के लिए किया गया है।

पंडित जवाहर लाल नेहरू

भारतीय विज्ञान कांग्रेस का 34वां वार्षिक अधिवेशन 3–8 जनवरी 1948 के दौरान दिल्ली में पं. जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में आयोजित हुआ था। वह तब अंतरिम सरकार के उप–राष्ट्रपति थे। विज्ञान कांग्रेस को संबोधित करते हुए पं. जवाहर लाल नेहरू ने घोषणा की, ''भारत में विज्ञान परवान चढ़ रहा है; यह सभी क्षेत्रों के द्रुत, योजनाबद्ध विकास द्वारा नए भारत की समस्याओं को हल करेगा तथा उसे अधिकाधिक वैज्ञानिक चिंतन समृद्ध बनाएगा।''

विज्ञान कांग्रेस में पं. नेहरू की व्यक्तिगत रूचि बनी रही और मुश्किल से ही ऐसा कोई अधिवेशन रहा होगा जिसमें वह शामिल न हुए हों। देश में, विशेषकर युवा पीढ़ी में वैज्ञानिक परिवेश के निर्माण में अपनी सतत रूचि के द्वारा उन्होंने कांग्रेस की गतिविधियों को बहुत समृद्ध करने का कार्य किया। वास्तव में, 1947 से विदेशी समितियों और अकादमियों के प्रतिनिधियों को विज्ञान काग्रेस नियमित रूप से आमंत्रित करता रहा है। भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग की सहायता से यह सिलसिला निरंतर जारी है।

(अनुवाद : रामशरण दास) ■

पृष्ठ 7 का शेषांश **अभाज्य संख्याओं का गूढ़ संबंध**

कुछ अन्य अर्धअभाज्य संख्याओं के उदाहरण हैं: 4, 6, 9, 10, 14, 15, 21, 22, 25 और 26।'

'सचमुच यह सब कुछ बहुत मजेदार है। अर्धअभाज्य संख्याओं की क्या विशेषताएं होती हैं?'

'किसी भी अभाज्य संख्या का वर्ग एक अर्धअभाज्य संख्या होती है। अतः जब तक कि अर्ध अभाज्य संख्याओं के गुणनखंड ज्ञात न हों, सबसे बड़ी ज्ञात अर्धअभाज्य संख्या हमेशा सबसे बड़ी ज्ञात अभाज्य संख्या का वर्ग होगी। जैसा कि तुम अनुमान लगा सकते हो, मरसेने अभाज्य संख्या पर आधारित सबसे बड़ी ज्ञात अर्धअभाज्य संख्या है $(2^{43112609}-1)^2$, जिसमें करीब 2.5 करोड़ अंक होते हैं। अभाज्य संख्याओं के समान, अर्धअभाज्य संख्यायें भी बीज लेखन (क्रिप्टोग्राफी) और संख्या सिद्धांत में बहुत महत्वपूर्ण होती हैं।'

'इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि 221वी बेकार स्ट्रीट का सबसे प्रसिद्ध बाशिंदा शरलॉक होम्स था।'

'221 की संख्या की अन्य कुछ आकर्षक विशेषताएं भी हैं। पांच क्रमिक अभाज्य संख्याओं के योगफल (37+41+43+53=221) और नौ क्रमिक अभाज्य संख्याओं के योगफल (11+13+17+19+23+31+37+41=221) के बराबर भी है।'

'यह बात तो अद्भुत है, अंकल! अभाज्य संख्याओं और होम्स के बारे में जानने के बाद मैं सोच रहा था कि आधुनिक होम्स कैसा दिखता।'

'बताते चलो गूगोल।'

'वनस्पति विज्ञान, भूविज्ञान, एनाटॉमी, रसायन विज्ञान और फोरेंसिक विज्ञान में विशद ज्ञान रखने के अलावा होम्स एक बीजलेखन विशेषज्ञ भी थे। वह सुबह के अखबार पढते हैं, इंटरनेट सर्फिंग करते हैं, तथा नियमित रूप से ट्विट एवं ब्लॉग लेखन भी करते हैं। आधुनिक समय की प्रौद्योगिकियों से संकेत लेते हुए, वह गुत्थियों को तुरत–फुरत अपने मस्तिष्क में ही सुलझा लेते हैं। हालांकि मैं पक्के यकीन के साथ यह नहीं कह सकता कि सामाजिक या इलेक्ट्रानिक मीडिया की चकाचौंध को वह कितना पसंद करते हैं!'

'यह तो शुरूआती बातें हैं, मेरे प्यारे गूगोल,' अंकल ने शरलॉक होम्स के मिलते–जुलते अंदाज में कहा।

(अनुवादः मनीष मोहन गोरे एवं आभास मुखर्जी) ■

पुरस्कार

14 सितंबर, 2012 को विज्ञान भवन, नई दिल्ली में आयोजित हिन्दी दिवस समारोह के अवसर पर महामहिम राष्ट्रपति श्री प्रणब मुखर्जी से विज्ञान प्रसार के मनीष मोहन गोरे (बाएं) और नवनीत गुप्ता "राजीव गांधी राष्ट्रीय ज्ञान–विज्ञान पुरस्कार" प्राप्त करते हुए। यह पुरस्कार गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग द्वारा हिन्दी में लिखी मौलिक विज्ञान पुस्तकों के लिए प्रदान किया जाता है।

क्रॉनिक मायेलॉयड ल्यूकेमिया– मूलभूत जानकारी

डॉ. यतीश अग्रवाल
ई–मेलः dryatish@yahoo.com

ल्यूकेमिया, अस्थिमज्जा के कैंसर रोगों का एक वर्ग है। अस्थिमज्जा में सामान्यतः सभी प्रकार की श्वेत रक्त कोशिकाएं बनती हैं। कैंसरयुक्त श्वेत रक्त कोशिकाओं में अपसामान्य वृद्धि हो जाने पर वे अनियंत्रित रूप से कई गुना बढने लगती हैं और अस्थिमज्जा में भर जाती हैं। ऐसा होने पर, अस्थिमज्जा में सामान्य श्वेत एवं लाल रक्त कोशिकाओं तथा बिम्बाणुओं यानी प्लेटेलेट्स का उत्पादन बाधित हो जाता है।

इस प्रकार के प्रत्येक अपविन्यास का स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। एक ओर लाल रक्त कोशिकाओं में कमी आ जाने पर रूधिर की ऑक्सीजन वहन क्षमता कम हो जाती है, दूसरी ओर श्वेत रक्त कोशिकाओं की कमी से मानव देह में संक्रमण का गंभीर खतरा बढ़ जाता है, साथ ही प्लेटेलेट्स के कम हो जाने पर रूधिर प्रवाह अपसामान्य होने लगता है।

ल्यूकेमिया के प्रकार

मोटे तौर पर ल्यूकेमिया रोगों को दो वर्गों में बांटा जाता है – एक्यूट ल्यूकेमिया जिसमें रोग के लक्षण तीव्रता से बढ़ते हैं तथा क्रॉनिक ल्यूकेमिया जिसमें रोग के लक्षणों की वृद्धि में बरसों लग सकते हैं। वयस्कों में किसी भी वर्ग का ल्यूकेमिया होना संभव है किन्तु बच्चों को सामान्यतः एक्यूट ल्यूकेमिया ही होता है।

जिन श्वेत रक्त कोशिकाओं के कैंसरग्रस्त हो जाने पर रोग हुआ हो उनकी श्रेणी के अनुसार एक्यूट ल्यूकेमिया को एक्यूट लिम्फ़ोब्लास्टिक एवं एक्यूट मायेलॉयड ल्यूकेमिया नामक दो अन्य वर्गों में विभाजित किया जाता है। क्रॉनिक ल्यूकेमिया के भी दो प्रकार होते हैः क्रॉनिक लिम्फ़ोसायटिक एवं क्रॉनिक मायेलॉयड ल्यूकेमिया।

एक्यूट ल्यूकेमिया अपरिपक्व कोशिकाओं को प्रभावित करता है और रोग शीघ्रता से बढ़ता है एवं अरक्तता, ज्वर, रूधिर स्राव तथा लसिका ग्रंथियों के शोथग्रस्त हो जाने जैसे रोगलक्षण प्रकट होते हैं। अपरिपक्व ल्यूकेमियाग्रस्त कोशिकाएं अस्थिमज्जा में विभाजित होती रहती हैं और समय रहते उनका उपचार न किए जाने पर जल्दी ही मृत्यु हो जाती है।

क्रॉनिक ल्यूकेमिया में कोशिकाएं कैंसरग्रस्त हो जाती हैं तथा ऊतकों तक पहुंच जाती हैं किंतु ये कोशिकांए सामान्य रूप से काम नहीं कर पातीं।

क्रॉनिक मायेलॉयड ल्यूकेमिया

क्रॉनिक मायेलॉयड ल्यूकेमिया भारत में पाया जाना वाला सर्वाधिक सामान्य रक्त कैंसर है। अपसामान्य श्वेत रक्त कोशिकाओं की रूधिर, अस्थिमज्जा एवं अन्य ऊतकों में घुसपैठ इसकी ख़ासियत है। ऐसा किसी भी आयु में होना संभव है, किन्तु सामान्यतः यह 30 से 60 वर्ष के बीच होता है। बहुत कम मामलों में, बच्चों को भी यह रोग होना संभव है। स्त्रियों एवं पुरुषों दोनों का रोगग्रस्त होना संभव है किंतु पुरूषों में यह 1.7 गुना अधिक पाया गया है।

कारण

क्रॉनिक मायेलॉयड ल्यूकेमिया के कारणों का अभी तक पता नहीं चल पाया है। इतना ज़रूर है कि इस रोग से ग्रस्त अधिकांश लोगों की कैंसरग्रस्त कोशिकाओं में एक अपसामान्य गुणसूत्र की उपस्थिति पाई गई है। इस गुणसूत्र को 'फिलाडेल्फ़िया क्रोमोसोम' नाम दिया गया है।

मानव कोशिकाओं में क्रोमोसोम के 23 जोड़े होते हैं जो डीएनए, जो शरीर की प्रत्येक क्रोशिका को निर्देश देते हैं, से निर्मित होते हैं। क्रोमोसोम 9 एवं क्रोमोसोम 22 के खोडित होकर एक दूसरे से मिल जाने पर 'फिलाडेल्फिया क्रोमोसोम' बनते हैं। ऐसा होने पर, क्रोमोसोम 22 असामान्य रुप से छोटा हो जाता है एवं यह कोशिकाओं को तब एक नए प्रकार के निर्देश देता है जिसके कारण क्रॉनिक मायेलॉयड ल्यूकेमिया की स्थिति उत्पन्न होने लगती है।

जोख़िम कारक

कुछ ऐसे कारक हैं जिनसे क्रॉनिक मायेलॉयड ल्यूकेमिया होने की आशंका बढ़ जाती है। वे हैं:

- वृद्धावस्था
- पुरूष वर्ग
- विकिरण उद्भासन, जैसे कुछ प्रकार के कैंसर रोगों में रेडियोथेरेपी

पारिवारिक वृत्त यानी फैमिली हिस्ट्री जोख़िम कारक नहीं है। क्रॉनिक मायेलॉयड ल्यूकेमिया को उत्पन्न करने वाले गुणसूत्र में होने वाला उत्परिवर्तन अभिभावकों से उनकी संतति तक नहीं पहुंचता। इस प्रकार का उत्परिवर्तन व्यक्ति स्वयं अर्जित करता है, अर्थात यह स्थिति जन्म लेने के बाद प्रकट होती है।

रोगलक्षण

क्रॉनिक मायेलॉयड ल्यूकेमिया के दो चरण होते हैं। पहले या चिरकारी चरण जो 3 से 5 वर्ष तक चलता है, में रोग लक्षण मंदगति से बढ़ते हैं और ये लक्षण होते भी मंद ही हैं। दूसरे या एक्यूट चरण में रोग के लक्षण अधिक गंभीर हो जाते हैं।

नैदानिक दृष्टि से रोग के चिरकारी चरण का सामान्यतः पता नहीं लग पाता। कुछ रोगियों का, रोगलक्षण व्यक्त न होने पर भी स्वास्थ्य परीक्षणों के दौरान निदान हो जाता हैं। अन्य लोग थकान, बेचैनी, वज़न में कमी आदि का अनुभव करते हैं या उनमें तिल्ली बढ जाने पर होने वाले रोगलक्षण दिखाई देते हैं जैसे कि, थोड़ा सा ही भोजन करने पर ही पेट भर जाना अथवा बाएं ऊपरी चतुरांश यानी क्वाडरेंट में दर्द अथवा पुंज (मास) का प्रकट होना। अपेक्षाकृत कम दिखाई देने वाले लक्षण, जो श्वेत रक्त कोशिकाओं अथवा प्लेटलेट्स के कार्य के बाधित होने पर प्रकट होते हैं, वे हैं – संक्रमण, थ्रॉम्बोसिस अथवा रूधिर स्राव। कभी–कभी रोगियों की श्वेत रक्त कोशिकाओं में गंभीर स्तर की वृद्धि अथवा रूधिर का थक्का जमने के कारण अधिक नाटकीयता से रोगलक्षण प्रकट होते हैं, जो रक्त वाहिकाओं में अवरोध, मस्तिष्क आघात, हृदयाघात, शिरा घनास्रता, शिश्न के कष्टप्रद लगातार कड़े बने रहने (प्रायपिज्म), दृष्टि संबंधी परेशानियों एवं फेफड़ों की कार्यक्षमता में कमी के रूप में दिखाई देते हैं।

रोग बढ़ने के साथ लक्षण और उग्र होने लगते हैं। अकारण होने वाला ज्वर, वज़न में ख़ासी कमी, रोग पर काबू पाने के लिए औषधि की अधिक मात्रा की आवश्यकता पड़ना, अस्थियों और जोड़ों में दर्द, रूधिर स्राव, घनास्रता यानी थ्रॉम्बोसिस एवं संक्रमणों से यह संकेत मिलता है कि रोग काफ़ी बढ गया है अथवा उग्रतम चरण में पहुंच गया है। नए निदानित रोगियों में से 10–15 प्रतिशत में रोग बढ़ी हुई हालत या फिर नए सिरे से उग्रतम चरण (सी.एम.एल) में पाया जाता है।

क्रॉनिक मायेलॉयड ल्यूकेमिया के संभाव्य संकेत एवं रोगलक्षणों में शामिल हैं:

शीघ्र थकान

रुग्ण श्वेत रक्त कोशिकाओं द्वारा स्वस्थ लाल रक्त कोशिकाओं का अतिक्रमण किए जाने पर अरक्तता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसा होने पर व्यक्ति हर वक्त थका–थका एवं शिथिलता का अनुभव करता है। रोगी की त्वचा पीली पड़ जाती है और सांस उखड़ने लगती है। क्रॉनिक मायेलॉयड ल्यूकेमिया का उपचार कराए जाने पर भी औषधियों के कारण लाल रक्त कोशिकाओं में कमी आ सकती है।

बाईं ओर की पसलियों की निचली तरफ़ तिल्ली बढ़ जाने के कारण भारीपन, परिणामतः भूख एवं वज़न में कमी

किसी व्यक्ति के क्रॉनिक मायेलॉयड ल्यूकेमिया ग्रस्त होने पर, अतिरिक्त रक्त कोशिकाओं में से कुछ तिल्ली में भर जाती हैं। ऐसा होने पर तिल्ली के बढ़ने या शोथग्रस्त हो जाने की संभावना रहती है, हालांकि तिल्ली बढ़कर फटने की स्थिति में जा पहुंचे ऐसा कम ही होता है। आम तौर पर बढ़ी हुई तिल्ली उदर में अपनी जगह बना लेती है और व्यक्ति को अल्प भोजन करने पर भी पेट के भर जाने का अहसास होता है या फिर वह बाईं तरफ की पसलियों के नीचे दर्द महसूस करता है।

नींद में पसीने का आना

क्रॉनिक मायेलॉयड ल्यूकेमियाग्रस्त व्यक्ति को नींद के दौरान अचानक काफ़ी पसीना आ जाने की भी शिकायत हो सकती है, हालांकि यह रोग की एक मात्र पहचान नहीं है। तपेदिक होने पर भी रात में पसीना आ जाता है।

अमूमन होने वाले संक्रमण एवं ज्वर

श्वेत रक्त कोशिकाओं से संक्रमण से जूझने में मदद मिलती है। क्रॉनिक मायेलॉयड ल्यूकेमियाग्रस्त रोगियों में हालांकि अत्यधिक मात्रा में श्वेत रक्त कोशिकाएं होती हैं किंतु ये अक्सर रुग्ण स्थिति में होती हैं और अपना काम सुचारू रूप से नहीं कर पातीं। परिणामतः वे स्वस्थ श्वेत रक्त कोशिकाओं के समान संक्रमण का मुकाबला

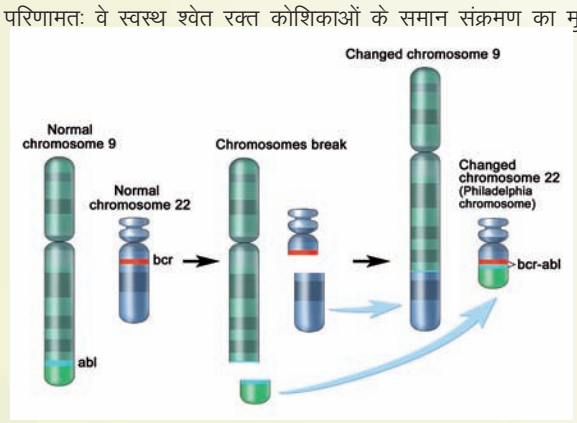

करने में असमर्थ रहती हैं। साथ ही ल्यूकेमिया का उपचार भी श्वेत रक्त कोशिकाओं की मात्रा को अत्यंत कम कर देता है (न्यूट्रोपीनिया) और इस कारण संक्रमण होने की आशंका बढ़ जाती है।

अपसामान्य चोटें एवं शीघ्र रुधिरस्राव

प्लेटेलेट्स कही जाने वाली रक्तकोशिकाएं रक्त वाहिकाओं में छोटे रिसावों को अवरूद्ध कर रुधिर स्राव को रोकने एवं रुधिर का थक्का बनने में मदद करती हैं। रक्त में प्लेटेलेट्स की कमी (थ्रॉम्बोसाइटोपीनिया) हो जाने पर शीघ्र रुधिर स्राव होने लगता है या चोटें लगती हैं, जिनमें गंभीर किस्म की नकसीरें, मसूड़ों से खून आना एवं शरीर की त्वचा के भीतर रूधिर स्राव से हो जाने वाले छोटे लाल धब्बे यानी रुधिर चिह्न (पेटेशिया) शामिल हैं।

हड्डियों एवं जोड़ों में दर्द

क्रॉनिक मायेलॉयड ल्यूकेमियाग्रस्त व्यक्ति हड्डियों एवं जोड़ों में दर्द का अनुभव भी कर सकता है। ऐसा श्वेत रक्त कोशिकाओं के बढ़ जाने पर अस्थिमज्जा के फैलाव के कारण होता है।

आघात अथवा अतिरिक्त थक्के जमना

क्रॉनिक मायेलॉयड ल्यूकेमियाग्रस्त कुछ रोगियों में अत्यधिक प्लेटेलेट्स बनने लगते हैं। इन प्लेटेलेट्स की उच्चतम मात्रा (थ्रॉम्बोसाइटोसिस) के कारण रुधिर में अत्यधिक थक्के जमने लगते हैं और परिणामतः आघात होने की आशंका बनी रहती है।

चिकित्सक से परामर्श

किसी सामान्य अथवा अपने पारिवारिक चिकित्सक से, ऊपर उल्लेख किए गए किसी भी रोगलक्षण के होने पर अवश्य संपर्क करें। रुधिर अथवा अन्य परीक्षणों से ल्यूकेमिया का संकेत मिलने पर आपके चिकित्सक रुधिर विशेषज्ञ, जिन्हें 'हिमैटोलॉजिस्ट' कहते हैं, के पास आपको रुधिर एवं अस्थिमज्जा संबंधी रोगों के निदान हेतु भेजना चाहेंगे।

इस दौरान ऐसा कोई भी काम न करें जिससे रोग के लक्षण और भी बिगड़ जाएं। मसलन थकान महसूस होने पर जितना संभव हो सके, आराम करें। सिर्फ़ दैनंदिन के अपरिहार्य कामों पर ही ध्यान दें। बाकी काम रोके जा सकते हैं।

यदि ज़ल्दी पेट भर जाने के कारण खाने में दिक्कत आ रही हो तो आहार दिन में कई बार और थोड़ी–थोड़ी मात्रा में लें।

परीक्षण एवं निदान

रोग निदान हेतु चिकित्सक अनेक प्रकार के परीक्षणों और प्रक्रियाओं का सहारा लेते हैं जिनमें से कुछ निम्नानुसार हो सकते हैं:

चिकित्सक द्वारा परीक्षण

चिकित्सक द्वारा सर्वप्रथम रोगी का शारीरिक परीक्षण किया जाता है और मुख्य संकेतों, जैसे नब्ज की गति एवं रक्तचाप की जांच की जाती है। वह व्यक्ति की लसिका ग्रंथियों, तिल्ली एवं उदर की जांच कर उनमें मौजूद अपसामान्यताओं का पता लगाने का प्रयास करता है।

रुधिर परीक्षण

सम्पूर्ण रुधिर गणन (सीबीसी) से रक्त कोशिकाओं की अपसामान्यताओं का पता लग पाता है। रुधिर के रासायनिक परीक्षणों द्वारा विभिन्न अवयवों की कार्य प्रणाली के मापन से भी ऐसी अपसामान्यताओं का पता चल जाता है जिससे चिकित्सक को निदान में मदद मिलती है।

अस्थिमज्जा परीक्षण

अस्थिमज्जा की बायोप्सी एवं अस्थिमज्जा चूषण (एस्पिरेशन) द्वारा प्रयोगशाला हेतु नमूने लिए जाते हैं। इन परीक्षणों में कूल्हे की हड्डी से अस्थिमज्जा के नमूने लिए जाते हैं।

फ़िलाडेल्फ़िया क्रोमोसोम की जांच हेतु परीक्षण

उक्त परीक्षणों में विशिष्ट परीक्षण शामिल हैं, जैसे कि फलोरोसेन्स इन सीटू इाइब्रिडाइजेशन (FISH) विश्लेषण एवं पॉलीमरेज़ चेन रिएक्शन (PCR) परीक्षणों द्वारा रुधिर एवं अस्थिमज्जा के नमूनों की जांच कर, फिलाडेल्फ़िया क्रोमोसोम या BCR-ABL जीन की उपस्थिति का पता लगाया जाता है।

(अगले माह – क्रॉनिक मायेलॉयड ल्यूकेमिया का मुकाबला करने के तरीके)

(अनुवादः कुंकुम जोशी) ■

2012 की दस महत्वपूर्ण विज्ञान खबरें

बिमान बसु
ई–मेल: bimanbasu@gmail.com

1. खोजा गया हिग्स बोसोन

लम्बे समय से जिसकी तलाश थी, हिग्स बोसोन नामक उस अवपरमाण्विक कण की सर्न के लार्ज हैड्रॉन कोलाइडर में किए गए प्रयोगो द्वारा, 4 जुलाई 2012 को हुई खोज से इस दुर्गाह्य या मायावी कण

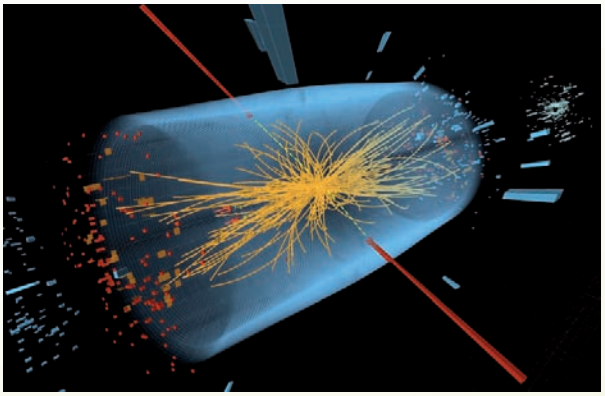

की पांच दशकों से भी अधिक समय से जारी तलाश अंतिम परिणति पर पहुंची। खरबों उच्च ऊर्जा प्रोटोन – प्रोटोन टक्करों के विश्लेषण के बाद, एलएचसी के एटलस एवं सी.एम.एस. दोनों संसूचकों द्वारा 125-126 GeV द्रव्यमान परिसर, जो हिग्स बोसॉन के लिए पुर्वानुमानित द्रव्यमान परिसर था, में एक बोसॉन के मौजूद होने के संगत संकेत रिकॉर्ड किए गए।

हिग्स बोसोन की अभिधारणा एक वाहक कण अथवा हिग्स क्षेत्र के बोसोन के रुप में की गई। यह एक ऐसा सैद्धान्तिक क्षेत्र है जो संपूर्ण दिक् में व्याप्त होकर सभी मूल परमाण्विक कणों के साथ अन्योन्यक्रिया द्वारा उन्हें द्रव्यमान प्रदान करता है। यह क्षेत्र और कण-जिनका नामकरण इस क्रियाविधि को प्रस्तावित करने वाले भौतिकीविदों में से एक, एडिनबर्ग विश्वविद्यालय के पीटर हिग्स के नाम पर किया गया है-मूल कणों में द्रव्यमान की उत्पत्ति की परीक्षणीय परिकल्पना प्रदान करते हैं।

हिग्स बोसोन की ऐतिहासिक खोज से भारत महत्वपूर्ण ढंग से जुड़ा रहा है। राजा रामन्ना सेन्टर फॉर एडवांस्ड टेक्नोलॉजी, इन्दौर; इंस्टिट्यूट ऑफ फिज़िक्स, भुवनेश्वर; पंजाब विश्वविद्यालय; गुवाहाटी विश्वविद्यालय; राजस्थान विश्वविद्यालय; साहा इंस्टिट्यूट ऑफ न्यूक्लियर फिजिक्स, कोलकाता; वेरियेबल एनर्जी साइक्लोट्रॉन सेन्टर, कोलकाता; बोस इन्स्टीट्यूट, कोलकाता तथा आई.आई.टी., मुम्बई सहित 17 भारतीय वैज्ञानिक संस्थानों ने एलएचसी के लिए महत्वपूर्ण घटक प्रदान किए जिनमें चुम्बक और संसूचक भी शामिल थे। साथ ही आंकड़ों के विश्लेषण के लिए उन्होंने सॉफ्टवेयर भी विकसित किए।

2. सर्वाधिक संहत ब्लैक होल

अभी तक सैकड़ों ब्लैक होल खोजे जा चुके हैं, परन्तु एकदम हाल ही की एक खोज ने द्रव्यमान के लिहाज से उन सबको पीछे छोड़ दिया है। इस असाधारण ब्लैक होल की खोज की घोषणा जिसका द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान का 17 अरब गुणा है, हाइडलवर्ग, जर्मनी स्थित मैक्स प्लांक इंस्टिट्यूट फॉर एस्ट्रोनॉमी के रैमको वान डेन बोश के नेतृत्व में खगोलविदों के एक दल द्वारा नवम्बर, 2012 में की गई। इस दल ने हबल स्पेस टेलिस्कोप तथा निकटवर्ती ब्रह्मांड की सर्वाधिक संहत मंदाकिनियों पर केन्द्रित फोर्टडेविस, टैक्सास स्थित हॉबी एबर्ली टेलिस्कोप द्वारा लिए गए आंकड़ों के संकलित भंडार का उपयोग किया। यह ब्लैक होल, पर्सियस तारामंडल में, लगभग 25 करोड़ प्रकाश वर्ष दूर, एनजीसी 1277 नामक मंदाकिनी में पाया गया। खगोलविदों के अनुसार, इस खोज से ब्लैक होल और मंदाकिनी के द्रव्यमानों के बीच का मान्य संबंध, जो मंदाकिनियों के विकास संबंधी सभी प्रचलित सिद्धांतों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, गड़बड़ा जाएगा।

हाल ही में खोजे गए इस ब्लैक होल के विषय में सर्वाधिक विस्मयकारी तथ्य यह है कि इसका द्रव्यमान

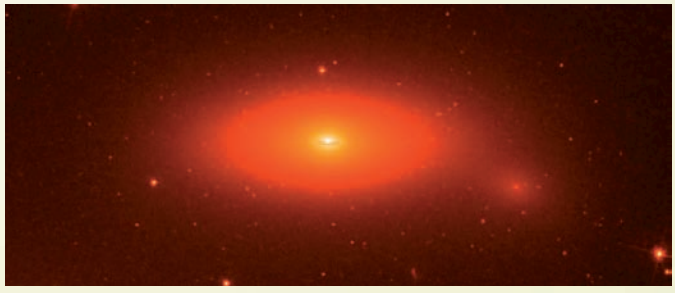

सम्पूर्ण मन्दाकिनी के द्रव्यमान की तुलना में बहुत अधिक है जो मंदाकिनियों के विकास संबंधी व्यापक रुप से मान्य विचारधारा के विरुद्ध है। अधिकांश विशाल मंदाकिनियों के केन्द्रों में विशाल ब्लैक होल मौजूद होते हैं। उदाहरण के लिए, आकाशगंगा मंदाकिनी के केंद्र के ब्लैक होल का द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान का 40 लाख गुना है। परन्तु इस प्रकार के ब्लैक होल प्रायः एक मानक सह-संबंध का अनुपालन करते हैं: प्रारुपिकतः, ब्लैक होल का द्रव्यमान मंदाकिनी के केंद्रीय उभार के द्रव्यमान का एक सूक्ष्म अंश मात्र होता है। हाल ही की यह खोज, अन्य लगभग 70 ब्लैक होल युक्त मंदाकिनियों के प्रेक्षणों पर आधारित पूर्व आकलनों के विरोध में है, जो यह संकेत देते हैं कि अतिसंहत ब्लैक होलों के द्रव्यमान प्रारुपिकतः अपनी मूल मंदाकिनियों के तारक उभारों के द्रव्यमान के लगभग 0.1% होते हैं। तुलना में एनजीसी 1277 का यह ब्लैक होल मंदाकिनी के केन्द्रीय तारक उभारों के द्रव्यमानों का लगभग 59% है।

3. मंगल अभियान 'क्यूरियोसिटी'

6 अगस्त 2012 को क्यूरियोसिटी नामक यान रोवर को मंगल की सतह पर पूरी सफलता के साथ उतार कर अमेरिकी अंतरिक्ष कार्यक्रम ने एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर स्थापित किया। 900 किलोग्राम का यह रोवर, जो अब तक मंगल ग्रह की सतह पर उतारे गए रोवरों में सबसे अधिक भारी है, पूर्ववर्त्ती सभी मंगल अभियानों से कई अर्थों में भिन्न है। मंगल के वायुमंडल में प्रवेश करने के बाद इसकी गति को मंद करने के लिए पहली बार रॉकेटों और एक विशाल पैराशूट का उपयोग किया गया था और मंगल ग्रह के गेल क्रेटर पर यह रोवर यान धीरे से उतर सके इसके लिए नासा द्वारा एक अतिविशिष्ट 'स्काई क्रेन' का उपयोग किया गया। मंगल ग्रह पर उतरने वाले पूर्ववर्ती किसी भी यान की तुलना में अधिक विशाल और भारी होने के अलावा क्यूरियोसिटी में ऊर्जा स्रोत के रुप में सौर सेल की बजाए क्षयमान रेडियोएक्टिव प्लूटोनियम की ऊष्मा का उपयोग किया गया है जो दिन-रात उच्चतर स्तर पर, क्यूरियोसिटी अभियान की आयु से दीर्घतर काल तक शक्ति प्रदान करने में सक्षम होगा।

मंगल विज्ञान प्रयोगशाला के नाम से अभिहित यह अभियान नवम्बर 2012, में प्रमोचित किया गया था। अभियान का मूल उद्देश्य इस बात के प्रमाण तलाशना है कि मंगल ग्रह पर कभी जीवन के लिए आवश्यक संघटक मौजूद रहे हैं या नहीं। क्यूरियोसिटी, को मंगल की मृदा को खोद कर और लेसर द्वारा चट्टानों में सुराख बना कर चार अरब वर्ष तक के भूगर्भीय कालक्रम तक पीछे जाकर, मंगल ग्रह के

पर्यावरण में कार्बनिक यौगिकों की तलाश करना है और जीवन के लिए आवश्यक तत्वों की उपस्थिति के संकेत ढूंढना है।

जुलाई-.2012 में गेल क्रेटर के अंदर नाटकीय ढंग से उतरने के बाद से क्यूरियोसिटी ने 23,000 अपरिष्कृत प्रतिबिम्ब भेजे हैं, उसने 517 मीटर की दूरी तय की है और उस क्षेत्र के पर्यावरणीय इतिहास को ज्यादा अच्छे ढंग से समझने में अनुसंधानकर्त्ताओं की सहायता करनी शुरु कर दी है। दिसम्बर 2012 में अभियान से जुड़े वैज्ञानिकों ने घोषणा की कि क्यूरियोसिटी ने क्लोरीन, सल्फर और जल के साथ-साथ ''आद्य जीवन के पनपने में सहायक कार्बनिक यौगिकों के संकेत'' के साक्ष्य भी प्राप्त किए हैं। दो वर्षीय प्राथमिक मिशन के दौरान क्यूरियोसिटी के 10 वैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग अनुसंधानकर्त्ता यह जानने के लिए करेंगे कि क्या गेल क्रेटर के अध्ययन वाले क्षेत्र में कभी सूक्ष्मजैविक जीवन के लिए सहायक पर्यावरणीय दशाएं मौजूद थीं।

4. बुध ग्रह के क्रेटरों में मौजूद जल

सूर्य से दूरी के क्रम में पहला ग्रह बुध, सौरमंडल का दूसरा सबसे अधिक गरम ग्रह है जिसके सतह का ताप

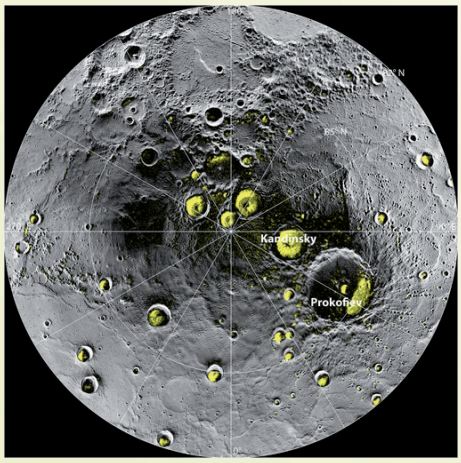

दिन के समय 400° C के अति उष्ण स्तर पर रहता है। लेकिन इसके चारों ओर परिक्रमा करते नासा के अन्वेषी अंतरिक्षयान मेसेन्जर ने हाल ही में इस ग्रह पर जल बर्फ की मौजूदगी के प्रमाण पाए हैं। मेसेन्जर अभियान पर कार्य करने वाले वैज्ञानिकों के अनुसार बुध ग्रह के ध्रुवीय क्रेटरों में, जहां सूर्य का प्रकाश कभी नहीं पहुंच पाता, 11 खरब टन बर्फ-जो 20 अरब ओलम्पिक स्केटिंग रिंको को भरने के लिए पर्याप्त है-मौजूद हो सकती है। वैज्ञानिकों के अनुसार, इस बर्फ का काफी बड़ा भाग कार्बन-समृद्ध कार्बनिक पदार्थों की कई सेंटीमीटर मोटी परत द्वारा संरक्षित हो सकती है तथा जल और यह कार्बनिक पदार्थ मूल रूप से बुध ग्रह से संबंध नहीं रखते हैं; ये संभवतः बर्फीले धूमकेतुओं के इसकी सतह के साथ टकराने से ही यहां पहुंचे हैं। यह खोज नवम्बर 2012 में साइंस जर्नल में प्रकाशित हुई थी।

ग्रह वैज्ञानिकों को कुछ दशकों पहले बुध ग्रह पर बर्फ की उपस्थिति के प्रबल संकेत प्राप्त हुए थे, जब उनके टेलिस्कोपों ने बुध की सतह से टकरा कर लौटने वाली रेडियों तंरगो को आश्चर्यजनक रुप से प्रबलित पाया था। लेकिन, कुछ अनुसंधानकर्त्ताओं ने कहा कि क्रेटरों में सिलिकेट यौगिकों अथवा सल्फर की परत हो सकती है जो बहुत अच्छे परावर्तक होते हैं। मेसेन्जर ने अब इस संदेह को दूर कर दिया है। अब हमारे पास यह जानकारी है कि हालांकि मध्यान्ह में बुध के विषुवत् वृत्त पर ताप 400°C के उच्च मान तक पहुंच सकता है, इसके ध्रुवों के निकट क्रेटरों की गहराई में, जहां कभी सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच पाता, ताप –223°C तक के निम्न मान को छू सकता है।

मेसेन्जर अंतरिक्षयान, जो मार्च 2011 से बुध ग्रह की परिक्रमा कर रहा है और अपना प्रथमिक मिशन पूरा कर चुका है, ने इस ग्रह की चट्टानों से निकलने वाले न्यूट्रॉनों की गणना करके इस ग्रह का और सूक्ष्मता से अध्ययन किया है। बुध ग्रह की सतह से टकराने वाली उच्च ऊर्जा ब्रह्मांड किरणें परमाणुओं को विघटित कर देती हैं। इन परमाणुओं के अवशेषों या मलबे में न्यूट्रॉन भी होते हैं जिनका संसूचन मेसेन्जर कर सकता है। लेकिन, जब एक तेज गतिमान न्यूट्रॉन हाइड्रोजन अणु जिसका भार लगभग उसके बराबर होता है, के साथ टकराता है, तो यह लगभग विराम की स्थिति में आ जाता है। जल के एक अणु में हाइड्रोजन के दो परमाणु होते हैं और इसलिए यह अधिक न्यूट्रानों को रोक देता है। इसलिए जब मेसेन्जर हिम-प्रधान क्षेत्र के ऊपर से गुजरा तो न्यूट्रॉनों की संख्या में गिरावट आ गई। यही तकनीक मंगल ग्रह पर इसकी सतह के नीचे तथा चंद्रमा के इसी प्रकार के क्रेटरों में जमे जल के संसूचन के लिए उपयोग में लाई गई।

5. प्लूटो का पांचवा उपग्रह मिला

प्लूटो जो कभी सौरमंडल का सबसे बाहर का ग्रह माना जाता था और जिसे वर्ष 2006 में ग्रहों के आसन से उतार कर 'बौने ग्रह' का दर्जा दे दिया गया था, जुलाई, 2012 में उसका पांचवा उपग्रह खोज लिया गया। यह नया उपग्रह, जो नामकरण न होने तक

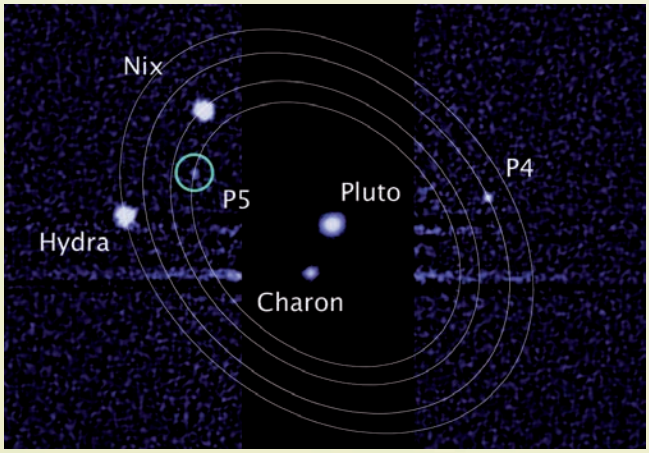

P5 कहलाएगा, आकृति में अनियमित है और इसके आकार को 10 से 25 किलोमीटर तक आकलित किया गया है। हबल द्वारा लिए गए सर्वोत्तम चित्र में भी यह नया उपग्रह, जो सूर्य से लगभग 5.9 अरब किलोमीटर की दूरी पर है, केवल प्रकाश के एक बिंदु जैसा दिखाई देता है। नए उपग्रह की कक्षा अभी भी अनिश्चित है। हालांकि यह भी उसी तल में घूमता हुआ लगता है जिसमें प्लूटो के अन्य उपग्रह घूमते हैं; और इसकी 'बौने ग्रह' से दूरी लगभग 42,000 किलोमीटर है। प्लूटो के सब से बड़े उपग्रह –1,050 किलोमीटर व्यास के शैरॉन की खोज 1978 में हुई थी। इसके दो छोटे उपग्रहों, निक्स एवं हायड्रा, की खोज 2005 और चौथे उपग्रह – P4 की खोज 2011 में हुई थी। P5 अत्यन्त धुंधला है, P4 की तुलना में यह आधा और प्लूटो की तुलना में लगभग एक लाख गुना कम चमकदार हैं और यह बौने ग्रह के बहुत निकट की कक्षा में उसकी परिक्रमा करता है।

प्लूटो के नए उपग्रह की खोज 7 जुलाई 2012 को संयोगवश उस समय हुई, जब नासा के अंतरिक्षयान *न्यू होराइजन*, जिसे 14 जुलाई 2015 को प्लूटो से 10,000 किलोमीटर की दूरी से गुजरना है, की प्लूटो से संभावित टक्कर के जोखिमों को लेकर जांच की जा रही थी। नासा के अनुसार, इस खोज से न्यू होराइजन अंतरिक्षयान को प्लूटो की ओर सुरक्षित ले जाने में मदद मिलेगी। बौने ग्रह के पास से, 48,000 किलोमीटर प्रति घंटे से भी अधिक गति से आगे बढ़ता हुआ न्यू होराइजन कक्षीय मलबे के एक छोटे से टुकडे से भी टकरा कर नष्ट होने की संभावना रखता है।

6. केले के जीनोम का अनुक्रमण सम्पन्न

पादप वैज्ञानिकों के एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ ने केले के पहले जीनोम अनुक्रमण के सम्पन्न होने की घोषणा की है जिसमें 36,000 से अधिक जीनों की मौजूदगी पाई गई है, जो मानव जीनोम में उपस्थित जीनों की संख्या से कुछ अधिक है। केला वानस्पतिक वर्ग, एकबीजपत्री में ऐसा पहला अ-शाद्वल पादप है जिसके सम्पूर्ण जीनोम का अनुक्रमण किया गया है। अनुक्रमित जीनोम में 52.3 करोड़ आधार-युग्म अर्थात् ऐसी रासायनिक इकाइयां हैं जिनसे डीएनए निर्मित होता है और जो आनुवांशिक सूचनाओं को कोडित करती हैं। केला अनेक ऊष्ण-कटिबन्धीय और उपोष्णीय देशों के खाद्य सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है और औद्योगिक देशों में सर्वाधिक लोकप्रिय फल है। यह भूमंडल के कुछ सबसे निर्धन भागों में रहने वाले 40 करोड से अधिक लोगों के लिए खाद्य और आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता है लेकिन उन्हें अनेक प्रकार के परजीवियों से लगातार जोखिम बना रहता है। केलों को उपजाना कठिन होता है और उन पर अनेक प्रकार की बीमारियों और अन्य पीड़क जीवों का हमला होता रहता है।

केले के जीनोम का ज्ञान महत्वपूर्ण है क्योंकि इनके वन्य संबंधियों के विपरीत इनकी खेती होती है, इनके बीज नहीं होते और परागण, निषेचन और बीज उत्पादन की प्रक्रियाओं

के बिना ही इनका विकास होता है। इन घर-घर में उगाये जा सकने वाले पादपों की वंशवृद्धि कायिक प्रवर्धन द्वारा होती है जिसमें मूल पौधे के किसी अंग का उपयोग किया जाता है। परिणामस्वरुप, संततियां आनुवांशिक रुप से मूल पादप के समान होती हैं और यह समानता आजकल उगाई जाने वाली अधिकांश किस्मों में कवक, जीवाणु एवं विषाणुजन्य रोगों के प्रति प्रवणता उत्पन्न करती है। केले के जीनोम अनुक्रमण का सम्पन्न होना भारत के लिए महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह विश्व का सबसे बड़ा केला उत्पादक देश है। पौधे के सम्पूर्ण जीनोम के ज्ञान से रोग प्रतिरोध तथा अन्य महत्वपूर्ण गुणों जैसे फल की श्रेष्ठता आदि के लिए जिम्मेदार जीनों की पहचान करना संभव हो सकेगा जिससे फल की सुधरी हुई किस्मों को उपजाने में मदद मिलेगी।

7. पगविहिन उभयचारियों की नई प्रजाति

पांच वर्ष से अधिक समय तक, सुदूर उत्तरपूर्वी भारत के 250 स्थानों पर, मानसून से भीगी मृदा को खोद कर दिल्ली विश्वविद्यालय की सत्यभामा दास बिजु के नेतृत्व में अनुसंधानकर्त्ताओं के एक दल ने पगविहिन उभयचारियों की एक बिल्कुल नई प्रजाति की खोज

की है जिसकी जानकारी अभी तक विज्ञान जगत को नहीं थी। अनुसंधानकर्त्ताओं के अनुसार, यह नई प्रजाति-जिसे चिकिलिडे कहा जाता है-इस क्षेत्र की स्थानिक प्रजाति है लेकिन प्राचीन काल में इसके अफ्रीका से संबंध रहे होंगे, जो यह दर्शाता है कि भारतीय उपमहाद्वीप के अफ्रीकी भूखंड से विलय होने से पहले इस प्रजाति का विकास हो चुका था।

रोचक बात यह है कि इन कृमि जैसे प्राणियों की कृमियों की अपेक्षा मेंढ़कों से अधिक समानता है। इस खोज से इस तथ्य संबंधी और साक्ष्य प्राप्त है कि भारत उभयचारी जीवन का एक समृद्ध केन्द्र है और इसके पर्यावासों को संरक्षित किया जाना चाहिए। अनुसंधानकर्त्ताओं के अनुसार, चिकिलिडे अत्यन्त समर्पित बिल बनाने वाले कृमि हैं। इनका जनन व्यवहार अतिविशिष्ट और कौतूहलपूर्ण है। मादा अंडे देने के लिए भूमिगत् नीड़ निर्मित करती है और अंडों के चारों ओर कुंडली मार कर बैठती है। इस तरह 2-3 महीनों तक भ्रूण के परिपक्व होकर बच्चे बन कर अंडों से बाहर आने तक वह उनकी रक्षा करती है।

8. अंटार्कटिका झील में प्राचीन सूक्ष्म जीव पाए गए

नवम्बर 2012 में नासा, रेनो, नेवादा स्थित डेजर्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट शिकागो स्किट इलिनॉय यूनिवर्सिटी, तथा नौ अन्य संस्थानों के वैज्ञानिकों के एक दल ने पृथ्वी के सबसे अदीप्त, सर्वाधिक लवणीय और ठंडे पर्यावरण-अंटार्कटिका की एक दूरस्थ लेक विडा नामक झील की बर्फीली सतह के लगभग 20 मीटर नीचे, जहां पिछले 2800 वर्षों से न तो प्रकाश ओर न ऑक्सीजन पहुंचा है, एक बैक्टीरिया समुदाय की खोज की घोषणा की है। विस्मयकारी बात यह है कि झील के जल में ऑक्सीजन नहीं है, यह प्रायः जमी रहती है और पृथ्वी पर मौजूद किसी भी प्राकृतिक जलाशय की तुलना में इसमें नाइट्रस ऑक्साइड का स्तर सबसे अधिक है। एक लवणयुक्त द्रव, जो समुद्र जल से लगभग 6 गुना अधिक लवणीय है, पूरे बर्फीले पर्यावरण, जहां औसत ताप –22°C है, में परिस्रवित रहता है। इस झील में, बैक्टीरिया की बत्तीस प्रजातियों की पहचान की गई। ऐसा माना जाता है कि ये झील के जल में हाइड्रोजन के साथ रासायनिक अभिक्रिया के जरिए जीवित रहते हैं। पृथ्वी के सबसे अन्धकारमय सर्वाधिक लवणीय और ठंडे पर्यावरण में जीवन के अस्तित्व की यह खोज इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे, इन दुर्गम पर्यावरणों में हमारे अपने ग्रह पर और इसके परे जीवन कैसे पोषित हो सकता है, इस बारे में हमारे सीमित ज्ञान में वृद्धि होती है।

भूरासायनिक विश्लेषण इस ओर इंगित करते हैं कि लवण जल और तलस्थ लौह-समृद्ध अवसादों के

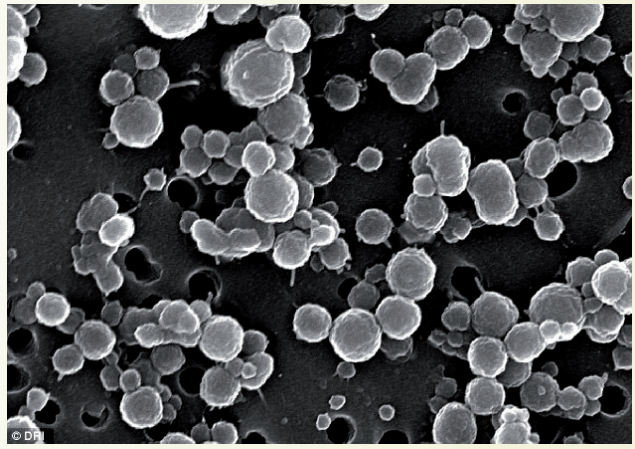

बीच रासायनिक अभिक्रिया द्वारा नाइट्रस ऑक्साइड एवं आण्विक हाइड्रोजन की उत्पत्ति होती है। अनुसंधानकर्त्ताओं के अनुसार, आण्विक हाइड्रोजन आंशिक रुप से लवण जल में मौजूद सूक्ष्मजैविक जीवन के पोषण के लिए आवश्यक ऊर्जा प्रदान कर सकती है।

विभिन्न जीनोम अनुक्रमण विधियों द्वारा लेक विडा झील के सूक्ष्मजैविक समुदाय का अध्ययन करने के अलावा इसके लवण जल और अवसाद के बीच अजैविक, रासायनिक अन्योन्यक्रियाओं संबंधी विश्लेषण से जुड़ा अनुसंधान अभी जारी है। प्राप्त परिणाम अन्य लवणीय और पृथ्वी के परे के निम्नतापी पर्यावरणों, जैसे कि मंगल ग्रह के अवपृष्ठीय जलभरों में जीवन की संभाव्यता की व्याख्या करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

9. मयूरों में संचार पर नई रोशनी

हम सभी मयूरों की तेज कर्णभेदी पुकार से सुपरिचित हैं परन्तु हाल ही में किया गया एक अध्ययन यह दर्शाता है कि प्रणय निवेदन के दौरान मयूर ऐसी निम्न आवृत्ति की ध्वनियों का भी उपयोग करते हैं जिन्हें मानव नहीं सुन सकते। मोर का सर्वाधिक आकर्षण इसकी लम्बी पूंछ है जो शानदार नेत्राकृतिक धब्बों से युक्त पंखों की श्रृंखला से बनी होती है। सामान्यतः मोर दृश्य तथा ध्वनि संकतों के माध्यम से संवाद करते हैं। मोर अपनी पुच्छ श्रृंखला का उपयोग एक अलंकृत प्रणय निवेदन प्रस्तुति के लिए करता है जिसमें इसके सुन्दर पंख, इसकी तेज, कर्णभेदी पुकार तथा एक अनुपम प्रणय निवेदन नृत्य सभी शामिल होते हैं। प्रणय निवेदन के दौरान मोर अपनी शानदार पंख श्रृंखला को पंखे के रुप में फैला लेता है और इन्हें तेजी से हिलाता है जिससे पंख श्रृंखला की कोरों के साथ-साथ एक उर्मिका नीचे की ओर चलती है या फिर वह आधार के पास से एक थरथराहट को बाहर की ओर भेजता है। इन दोनों ही विशिष्ट गतियों में मानवों को जो सुनाई देता है वह पत्तियों के खरखराने जैसी ध्वनि होती है। परन्तु जब कनाडा के मेनिटोबा यूनिवर्सिटी में जीवविज्ञान की स्नातक विद्यार्थी एन्जेला फ्रीमैन के नेतृत्व में एक अनुसंधान दल ने इन ध्वनियों को रिकार्ड किया तो उन्हें बहुत ही निम्न तारत्व की

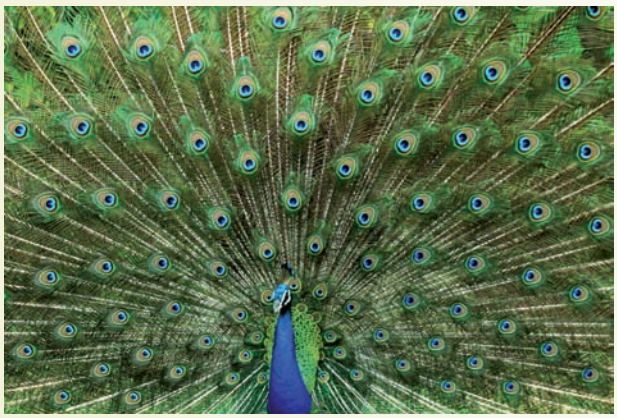

ध्वनियां प्राप्त हुईं जो मानवों के लिए अश्रव्य थीं और फैले हुए पंखों के कंपन से उत्पन्न होती थीं। अनुसंधान दल ने पाया कि प्रणय निवेदन के दौरान जब नर मयूर अपने पंख फैलाते हैं तो वे अत्यन्त निम्न आवृत्ति की गहरी खरखराहट की ध्वनि भी उत्पन्न करते हैं जो मानवों द्वारा नहीं सुनी जा सकतीं।

मानव केवल एक विशिष्ट आवृत्ति परिसर-20 हर्ट्ज से 20,000 हर्ट्ज–तक की ध्वनियों को ही सुन सकते हैं। 20 हर्ट्ज से कम आवृत्ति की ध्वनियां अवश्रव्य ध्वनियां कहलाती हैं। इन्हें मानव नहीं सुन सकते लेकिन ये हाथियों द्वारा सुनी जा सकती हैं, जबकि 20,000 हर्ट्ज से अधिक आवृत्ति की ध्वनियां, जिन्हें पराश्रव्य ध्वनियां कहते हैं, कुत्तों, मूषकों और चमगादड़ों जैसे प्राणियों द्वारा सुनी जा सकती हैं। पक्षियों के कलरव की विभिन्न आवृत्तियां होती हैं और इनका उपयोग वे संवाद और प्रणय निवेदन दोनों के लिए ही करते हैं।

फ्रीमैन ने जब रिकॉर्ड की गई ध्वनियों को पक्षियों के लिए बजाया तो मादाएं सावधान दिखाई पड़ीं और नर अपनी सुपरिचित तीव्र पुकार के लिए तैयार दिखाई दिए जिससे अवश्रव्य ध्वनियों के प्रति उनकी प्रतिक्रिया के बारे में संकेत मिला। यह जानकारी लम्बे समय से है कि हाथी 20 हर्ट्ज से कम आवृत्ति की ध्वनियों का उपयोग अधिक दूरियों तक संचार के लिए करते हैं। यह पहली दफा है जब किसी पक्षी के बारे में यह दर्शाया गया कि वे मानवों के लिए अवश्रव्य ध्वनियों को संचार हेतु उत्पन्न और ग्रहण करते हैं।

10. मलेरिया के विरुद्ध कम लागत की औषधियां

एक समय था जब सिन्कोना वृक्ष की छाल से प्राप्त कुनीन सर्वाधिक प्रभावी मलेरियारोधी औषधि हुआ करती थी, परन्तु अब यह अप्रभावी हो गई है क्योंकि मलेरिया परजीवी ने इसके विरूद्ध प्रतिरोधकता विकसित कर ली है। आज उपलब्ध एक मात्र प्रभावी मलेरियारोधी औषधि आर्टिमिसिनिन है – जो मधुर नागदमनी (आर्टिमिसिया एन्नुआ) पौधे से प्राप्त होती है और पारंपरिक चीनी औषधि प्रणाली की एक जड़ी-बूटी है। सन् 2001 से विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू एच ओ) ने अपनी यह संस्तुति दी है कि आर्टीमिसिनिन आधारित संयोजन उपचार (एसीटी), जिनमें अन्य औषधियों के साथ आर्टिमिसिनिन को मिलाया जाता है, को विश्वभर में पुरानी अप्रभावी औषधियों के स्थान पर उपयोग में लाया जाए। ये संयोजन मलेरिया नियंत्रण की आधारशिला बन गए हैं और ऐसा माना जाता है कि उनके कारण अनेक जिंदगानियां बची हैं।

परन्तु आर्टिमिसिनिन एक मंहगी औषधि है और गरीब देशों के अधिकांश रोगियों की पहुंच से बाहर है। अभी भी एसीटी का मूल्य 1 से 2 डॉलर प्रति उपचार है जिसे निर्धन रोगी मुश्किल से ही चुका पाता है। अब इन रोगियों के लिए आशा की किरण जगी है। जनवरी 2012 में जर्मनी के मैक्स प्लांक इंस्टिट्यूट ऑफ कोलायड्स एंड इंटरफेसेज के वैज्ञानिकों ने आर्टिमिसिनिन अणु के संश्लेषण की एक सरल विधि विकसित की है जिससे इस औषधि के मूल्य में भारी गिरावट आ जाएगी। संश्लेषण प्रक्रिया में आर्टिमिसिनिन अम्ल का उपयोग किया जाता है जो मधुर नागदमनी की पत्तियों से आर्टिमिसिनिन को निष्कर्षित कर लेने के बाद बचा हुआ उत्पाद है। एक किलोग्राम आर्टिमिसिनिन के निष्कर्षण के दौरान 10 किलोग्राम आर्टिमिसिनिन अम्ल निर्मित होता है जिसे फेंक दिया जाता है क्योंकि इसका आर्टिमिसिनिन में रूपांतरण फिलहाल मूल्य प्रभावी नहीं है।

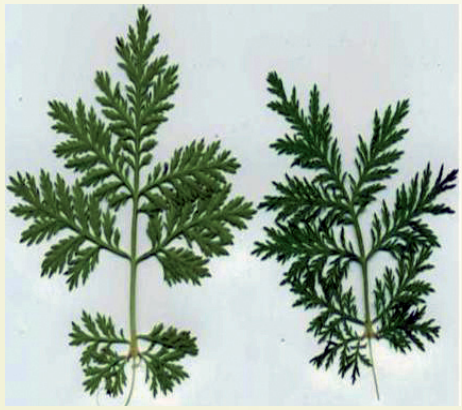

मैक्स प्लांक इंस्टिट्यूट के दो अनुसंधानकर्त्ताओं, पीटर सीबर्गर और फ्रेंकोई लेवेस्क ने जनवरी 2012 में यह घोषणा की कि ऑक्सीजन और पराबैंगनी प्रकाश के संयोजन से आर्टिमिसिनिन अम्ल से आर्टिमिसिनिन के संश्लेषण की एक सस्ती, त्रिचरणीय सतत् प्रवाह विधि का विकास उन्होंने किया। उन्होंने एक सतत् प्रवाह अभिक्रियक में मात्र साढे चार मिनटों में आर्टिमिसिनिय अम्ल को आर्टिमिसिनिन में परिवर्तित कर दिखाया। वैज्ञानिकों के अनुसार, उत्पादन को प्रतिदिन 2 किलोग्राम तक बढ़ाया जा सकता है और जब यह हो जाएगा तब समग्र विश्व के लिए औषधि की साल भर की आवश्यकता केवल 150 अभिक्रियको द्वारा ही पूरी जा सकेगी और औषधि का मूल्य इसके वर्तमान मूल्य का लगभग पांचवां भाग रह जाएगा।

(अनुवादः रामशरण दास) ■

संपादक के नाम पत्र

एल एच सी पर लिखा संपादकीय अच्छा एवं संवेदनशील

ड्रीम 2047 के अक्टूबर 2012 अंक की प्रति प्राप्त हुई और इसे पढ़कर अत्यंत खुशी हुई। LHC पर लिखा गया संपादकीय अच्छा और अति संवेदनशील लगा। रिन्टू नाथ की गणित प्रसंग की बातें अपने अंदाज में अनोखी हैं। संपादकीय को पढ़ना मैं छोड़ नहीं सकता और रिन्टू नाथ की पांच पंक्तियों को पढ़ने पर आगे पढ़ने की ललक बढ़ती ही जाती है। जिनकी रूचि गणित में नहीं है वे भी रिन्टू नाथ के लेखों को पढ़ने लगे है। डॉ. विनय काम्बले की हिग्स बोसॉन संबंधी जानकारी, डा. अमृता सिंह की प्रवाल भित्तियों पर आलेख और डा. यतीश अग्रवाल की 'घुमनी' के साथ–साथ बिमान बसु लिखित 'विज्ञान और प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां स्तंभ में भी जानकारियां कूट–कूट कर भरी थीं।

मेरी तरफ से *ड्रीम 2047* की पूरी टीम को हार्दिक बधाई। यह क्रम निरंतर बना रहे, यही कामना है।

प्रशान्त कुमार
#1442A,सैक्टर–'B', चण्डीगढ़ – 160022

सूर्य के समान प्रकाश देता *ड्रीम 2047*

ड्रीम 2047 का अगस्त 2012 अंक सूर्य के समान प्रकाश देता एवं अंधविश्वास को समाप्त कर जागृति प्रदान करता हुआ प्राप्त हुआ। प्रथम पृष्ठ ही ''सम्मिश्र संख्याओं का इतिहास'' अपनी सफलता की स्वयं कहानी कह रहा है। ''विज्ञान संचार में तारामंडलों की भूमिका'' पर लिखा सम्पादकीय बहुत अच्छी जानकारी देता है। आघात–रोग लक्षण, परीक्षण एवं निदान एवं शुक्र पारगमन 2012 दोनों लेख अच्छी जानकारी देते हैं। पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूं।

श्रीमती अंजनी रस्तोगी
अध्यक्ष/प्रबन्धक
अरविन्द महिला विकास क्लब (समिति)
बढ़ई चौक, बादायूं – 243601 (उ.प्र.)

गणित पर लिखे लेखों से विद्यार्थियों को मिल रहा लाभ

मैं ''ड्रीम 2047'' पत्रिका का एक नियमित पाठक हूं। प्रत्येक माह की भांति सितंबर 2012 का अंक भी नियत समय पर प्राप्त हुआ। इसमें प्रकाशित 'अंतरिक्ष अन्वेषणः अज्ञात की खोज में' शीर्षक से डा. महंती का लिखा संपादकीय बहुत अच्छा लगा। गणित से संबंधित अद्भुत जानकारी के अंतर्गत 'आपरेशन शून्य' शीर्षक रिन्टू नाथ का लेख पढ़कर अत्यंत ज्ञानवर्द्धन हुआ। सन् 2012 के हर अंक में प्रकाशित गणित पर लिखे लेखों से विद्यार्थी काफी लाभान्वित हो रहे हैं। आशा है कि भविष्य में भी ऐसे ही लेख हम लोगों को पढ़ने को मिलते रहेंगे।

न्यूटन साइंस क्लब (विपनेट)
श्री मुकुन्द कुमार तिवारी (कॉर्डिनेटर)
ग्राम/पोस्ट/थाना – पिपराही
वार्ड नं. 05, जिला – शिवहर
(बिहार) पिन – 843334